9.7.4



॥ श्रीहरिः ॥

कलेजेके अक्षर

(पढ़ो, समझो और करो, भाग २)

गीताप्रेस, गोरखपुर

मूल्य एक रुपया पचीस पैसे

[illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible]

[illegible]

॥ श्रीहरिः ॥

कलेजेके अक्षर

[पढ़ो, समझो और करो,

भाग २]

प्रकाशक—

मोतीलाल जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२५ से २०३४ तक	९५,०००
सं० २०३६ सातवाँ संस्करण	३५,०००
सं० २०३९ आठवाँ संस्करण	५०,०००
कुल	१,८०,०००

मूल्य एक रुपया

एक रुपया पचीस पैसा

मुद्रक—

सरल ऑटो प्रेस, लखनऊ

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

सम्पादकका निवेदन

'कल्याण'में 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें जो जीवनमें सात्त्विकता ला देनेवाली, जीवनको उच्चस्तरपर चढ़ा देनेवाली, मानवताका सच्चा स्वरूप बतलाकर उसका विकास करनेवाली एवं भगवान्‌की ओर लगानेवाली सच्ची घटनाएँ छपती हैं, वे सभी पाठकोंके लिये बड़े ही आकर्षणकी वस्तु हैं । उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करनेके लिये हमारे पास सैकड़ों पत्र आ चुके । अब भगवत्कृपासे उन्हें प्रकाशित करनेकी व्यवस्था हो पायी है । अबतक प्रकाशित घटनाएँ कई भागोंमें छोटी-छोटी पुस्तिकाओंके रूपमें विभिन्न नामोंसे प्रकाशित होंगी । इनका पहला भाग तो 'पढ़ो, समझो और करो' नामसे ही कई वर्ष पूर्व छपा हुआ था । अब यह दूसरी पुस्तिका 'कलेजेके अक्षर' नामसे प्रकाशित की जा रही है । इस पुस्तिका में 'कलेजे के अक्षर' शीर्षक एक घटना छपी है, उसीके अनुसार यह नाम दिया गया है ।

इस शीर्षकके लिये घटनाएँ लिखकर भेजनेवाले महानुभावोंके हम कृतज्ञ हैं और निवेदन है कि वे तथा अन्यान्य सज्जन मानवताको ऊँची उठानेवाली सच्ची घटनाएँ लिखकर 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ भेजते रहें । चमत्कारीकी घटनाएँ तो बहुत आती हैं—पर आचरण तथा चरित्रको उज्जवल बनानेवाली घटनाएँ विशेषरूपसे

आनी चाहिये। इस 'शीर्षक'में बहुत-सी घटनाएँ हमारे अत्यन्त निकट-के प्रेमी ब्रह्मलीन परम संत स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीके 'सस्तुं साहित्यवर्धक' कार्यालय, अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती मासिक पत्र 'अखण्ड आनन्द' से लेकर छापी जाती हैं। इसके लिये हम उसके सम्पादक महोदय तथा लेखकोंके कृतज्ञ हैं।

पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस पुस्तिकामें प्रकाशित आदर्श घटनाओंका अध्ययन करके लाभ उठावें, उनसे जीवनमें शिक्षा ग्रहण करें और भविष्यमें प्रकाशित होनेवाले अगले भागोंसे भी लाभान्वित हों। स्वयं लाभ उठावें और पुस्तिकाओंका प्रचार करके दूसरोंको भी लाभ पहुँचानेका प्रयत्न करें। यह जनताकी बड़ी सेवा होगी।

उपहारमें देने तथा विवाह-शादियोंमें बाँटनेके लिये भी यह साहित्य बहुत उपयोगी है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक

—:●:—

ॐ

विषय-सूची

वषय		पृष्ठ संख्या
१–'हरिःशरणम्' मन्त्रसे भीषण रोग-नाश	...	७
२–अनोखी उदारता	...	११
३–गोदुग्ध अमृत है (डा० श्रीश्याममनोहर कपूर)	...	१३
४–दरिद्रता और मनुष्यता (श्रीबाबूलाल बसावेका, साहित्यरत्न)	...	१५
५–कलेजेके अक्षर (श्रीजयन्ती शाह)	...	१८
६–रूसी महिलाकी सज्जनता (श्री ल० दे० राठौर)	...	२२
७–हककी छाछ (श्रीइच्छाशंकर पंड्या)	...	२४
८–हर्षका सागर उमड़ पड़ा (श्रीविद्यानन्द)	...	२५
९–माँगने आये कि देने ? (श्रीसोहनलाल गुप्त)	...	२९
१०–'राखे राम तो मारे कौन ?' (श्रीरामजीवन चौधरी)	...	३३
११–प्रार्थना सुफल (श्री ई० एस० पी०–एक अमेरिकन महिला)	...	३९
१२–गरीबोंके सहायक (श्रीरमणीक गोसलिया)	...	४१
१३–मानवता (१)	...	४३
१४–मानवता (२) (श्रीमहेश आचार्य)	...	४५
१५–वह कौन था ? (श्रीरामकृष्ण वैद्य)	...	४७
१६–मैं तुम्हारा मित्र हूँ (श्रीगजानन शर्मा)	...	४९
१७–विलक्षण सद्व्यवहार (श्रीरामकुमार गुप्त)	...	५३
१८–क्रोधपर विजय (श्री एम० एस०–एक अमेरिकन महिला)	...	५६
१९–भगवान्की सर्वसमर्थ कृपाशक्ति (श्री आर० जी० आर०–एक अमेरिकन सज्जन)	...	५९
२०–सच्ची मानवता (श्रीजेठालाल कानजी शाह)	...	६०
२१–मानवताका झरना (श्रीमधुकान्त भट्ट)	...	६१
२२–ईमानदारीका उत्तराधिकार (श्रीतोलाराम गुप्त)	...	६३
२३–सच्ची मानवता और पड़ोसी-धर्म (श्रीलेखराज मेहरा)	...	६७
२४–दिल्लीका ईमानदार मजदूर (श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल)	...	६९
२५–सद्गुरुकी महिमा (श्रीमती तारा पण्डित, एम० ए०)	...	७०

विषय		पृष्ठ-संख्या
२६–गङ्गाजलका प्रभाव (श्रीरमेन्द्रप्रसाद सिंह विद्यार्थी)	...	७३
२७–लन्दनके टैक्सीवालेकी सहृदयता (श्रीशान्तिलाल दीनानाथ मेहता)	...	७५
२८–सच्ची सर्राफी (श्रीलल्लूभाई वकोरभाई पटेल)	...	७७
२९–कानूनी कर्तव्यसे ईश्वरीय कर्तव्यकी श्रेष्ठता (श्री एच० एच० त्रिवेदी)	...	७९
३०–नवरात्र-व्रतकी महिमा (श्री एम० एल० शाण्डिल्य)	...	८१
३१–भगवन्नामसे प्रत्येक कष्ट कट गया (श्रीरमेशचन्द्र गोस्वामी)	...	८४
३२–सेठकी उदारता और विशाल हृदयता (श्री सी० एल० गुप्त)	...	८७
३३–ईमानदारीका आदर्श (श्रीहरबंसराम)	...	८९
३४–भगवान्‌की कृपा तथा मुसलमान सज्जनकी उदारता (श्रीगोविन्दराम अरोड़ा)	...	९१
३५–मानवताकी ज्योति	...	९४
३६–मोमिनकी ईमानदारी (श्रीचिरंजीलाल)	...	९६
३७–भगवान्‌का भेजा बेटा (श्रीगुणवन्तराय परमानन्द मालविया)	...	९७
३८–आदर्श आतिथ्य (श्रीमधुकान्त भट्ट)	...	१००
३९–वे कौन थे ? (श्रीवंशीलाल एम० अग्रवाल, बी० ए०)	...	१०३
४०–विश्वासका फल (पं० श्री चन्द्रिकाप्रसाद वाजपेयी)	...	१०५
४१–सेवा-मूर्ति (श्रीकुमुदजी कथावाचक, बी० ए०, साहित्यरत्न)	...	१११
४२–भिखारिनके भेषमें पवित्र संस्कार-मूर्ति (श्रीरमाशंकर ना० भट्ट)	...	११३
४३–गरीबकी परोपकार-वृत्ति (श्रीनवरत्नमल नाहर)	...	११५
४४–अमृतका प्रवाह (श्रीगोपाल अवस्थी)	...	११७
४५–कर्जका भय (श्रीहरीराम केडिया)	...	१२०
४६–नष्ट नीड (श्रीमोहनलाल चतर)	...	१२१
४७–सहिष्णुता (श्रीसुन्दरलाल बोहरा)	...	१२४
४८–परमिट (श्रीजशवंत शायर)	...	१२५

—: ● :—

॥ श्रीहरिः ॥

कलेजेके अक्षर

[पढ़ो, समझो और करो, भाग २]

'हरिःशरणम्' मन्त्रसे भीषण रोग-नाश

कलकत्तेकी कुछ समय पहलेकी घटना है। उस समय कलकत्ते-में प्रतिवर्ष प्लेगका प्रसार होता था और उससे हजारों मनुष्य मरते थे। कलकत्तेके लोग प्लेगसे बचनेके लिये बाहर चले जाते थे। बड़ी परेशानी रहती थी। जगह-जगह अखण्ड कीर्तनका आयोजन होता था। उन्हीं दिनों एक बार एक बड़े शिक्षित धनी बाबूको प्लेग हो गया। वे धनके साथ ही संस्कृतज्ञान और भगवान्‌की भक्तिसे भी सम्पन्न थे। अपने घरमें अकेले थे। स्त्री-पुत्रादि कोई न थे। नौकर-चाकर आदि सब काम करते थे। एक बहुत बड़े अनुभवी प्रख्यात डाक्टर देखने आये। बहुत जोरका ज्वर था। दोनों ओर गिल्टियाँ थीं। संनिपात आरम्भ हो गया था। डाक्टर कह गये थे कि रात्रिको किसी समय उनका प्राणान्त हो जायगा। उक्त सज्जनने अपने विश्वासी सेवकको बुलाकर गङ्गाजलसे गमछा भिगवाया और उससे सारा बदन पोंछवा लिया। कपड़े बदल लिये, भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र सामने रखवा लिया और तीनों ओर तकिये लगाकर वे बैठ गये। नौकरसे कह दिया कि 'बाहर से किवाड़ बंद कर दो और

तुम बाहर सो जाओ। या तो मैं खुलवाऊँ तब किवाड़ खोलना। मैं न खुलवाऊँ तो सूर्योदय होनेपर तुम खोल लेना। मर गया होऊँ तो अन्त्येष्टि-संस्कारकी व्यवस्था सब परिवारवालोंको समाचार देकर करा देना।' नौकरने किवाड़ बंद कर दिये और बाहर बैठकर वह प्रातःकालकी प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल सूर्योदयसे दो घण्टे पूर्व लगभग चार बजे अंदरसे आवाज आयी। नौकरने किवाड़ खोले। मालिकने कहा—'गङ्गाजीपर जाकर सौ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आओ और रसोइयोंको बुलाकर बढ़िया रसोई बनवाओ। दस बजेसे पूर्व ही ब्राह्मण-भोजन करवाना है।' उस समय उनका ज्वर उतर चुका था। गिल्टियाँ बैठ गयी थीं। कहीं कोई दर्द न था।

नौकरने आज्ञानुसार सारी व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण-भोजन हो गया। उधर डाक्टर महोदयको पता लगानेपर जब ज्ञात हुआ कि रोगी अभी जीवित है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने निर्णयपर उनको पूरा विश्वास था। ऐसा रोगी दो-तीन पहरसे अधिक जी नहीं सकता, यह उनका निश्चय था। वे इनसे बहुत प्रेम करते थे, अतएव स्वयं देखने आये। आकर साश्चर्य देखते हैं कि विधिवत स्नान-संध्या किये हुए उक्त सज्जन पट्टवस्त्र पहने आसनपर बैठे हैं। ब्राह्मण-भोजनका यज्ञशेष चौकीपर चाँदीकी थालीमें परोसा हुआ है और वे स्वाभाविक रूपमें उसे पा रहे हैं। डाक्टर महोदयने पूछा—'बाबू! यह सब किसकी सम्मतिसे खा रहे हैं?' बाबूने कहा—'जिनकी दवासे प्लेग छूमन्तर हो गया, उन्हींकी आज्ञासे प्रसाद पा रहा हूँ।' निपुण डाक्टरको यहाँ भी

भ्रम हो गया। उन्होंने समझा कि बाबू संनिपातमें यह सब कर रहे हैं। वे जाते समय सेवकोंसे सावधान रहनेके लिये कह गये।

पर बाबू तो रोगमुक्त हो चुके थे। तीन-चार दिनों बाद डाक्टर साहबने आकर बाबूसे पूछा—'आपने किस चिकित्सकसे क्या दवा ली, यह बताइये।' बाबू डाक्टर महोदयको ऊपर उसी कमरेमें ले गये, जिसमें वे उस दिन थे। वहाँ डाक्टर साहबको कुर्सीपर बैठाकर वे पलंगपर बैठ गये और कहने लगे—'डाक्टर महोदय! आप उस दिन कह ही गये थे कि रातको प्राणान्त हो जायगा। आपके जानेके पश्चात् मुझको श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वह प्रसंग याद आ गया, जिसमें श्रीनारदजीने सनकादिसे कहा है कि 'आप इसीसे चिरजीवी बालक बने हुए हैं कि आप निरन्तर 'हरिः-शरणम्' मन्त्रका जप करते रहते हैं। मैंने सोचा, प्राणान्त तो होना ही है, मैं भी भगवान्के शरण होकर 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप क्यों न करूँ—सम्भव है, सनकादिको नित्य-बालक रखनेवाले इस मन्त्रसे मेरे प्राण न जायँ और यदि प्राण गये भी तो भगवान्का स्मरण करते हुए ही जायँगे। दोनों ही प्रकारसे लाभ है। यह सोचकर मैंने गङ्गाजलसे शरीर शुद्ध करके शुद्ध रेशमी वस्त्र पहन लिये और भगवान् श्रीकृष्णके चित्रको सामने रखकर 'हरिःशरणम्' मन्त्रका जप करने लगा। कुछ ही समयमें मन तन्मय हो गया। मुझे बाहरकी सुधि नहीं रही! भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा। जब बाह्य चेतना हुई, तब देखा कि शरीर हल्का हो गया है, ज्वर नहीं है, गाँठ बैठ गयी हैं, पूर्ण स्वस्थता आ गयी है। उस समय चार बजे थे। तब मैंने ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था करायी।

आप पधारे थे, उस समय सब ब्राह्मण भोजन कर चुके थे और मैं भगवान्‌का प्रसाद पा रहा था ।'

'हरिःशरणम्' मन्त्ररूपी औषधसे भयानक प्लेगका तुरन्त ही नाश हो गया और मरणासन्न रोगी स्वस्थ हो गया । इस प्रत्यक्ष चमत्कारको देखकर डाक्टर चकित हो गये ।

—:●:—

अनोखी उदारता

कई वर्षों पूर्वकी कलकत्तेकी घटना है। शेयर बाजारके एक प्रमुख व्यापारी फर्मके तीस हजारके शेयर चोरी हो गये। पता लगनेपर पुलिसमें रिपोर्ट दे दी गयी और कम्पनीको लिख दिया गया कि 'हमारे अमुक संख्याके शेयर खो गये हैं। अतः नाम-परिवर्तनके लिये कम्पनीमें आयें तो नाम-परिवर्तन न करके हमें सूचना दें।'

कुछ दिनों बाद नाम-परिवर्तनके लिये शेयर कम्पनीमें आये। कम्पनीने सूचना दी। पता लगाया गया कि किस-किसके हाथोंसे होते हुए शेयर कम्पनीमें आये हैं और सबसे पहले कहाँसे चले हैं। खोज करनेपर पता लगा कि सबसे पहले उस व्यापारी फर्मके रोकड़िये द्वारा ही शेयर गये हैं। फर्मके स्वामीको सूचना दी गयी। उन्होंने पुलिसको खबर देने या रोकड़िये को बुलाकर डाँटनेके बदले तुरंत कम्पनीको पत्र लिखवा दिया कि 'हमारे शेयरोंका पता लग गया है। आप नाम-परिवर्तन कर दें।' और पुलिसको शेयर मिल जानेकी खबर भेज दी गयी।

व्यापारी महोदयके प्रधान मैनेजरने कहा—'बाबूजी! उसे पकड़वाइयेगा नहीं।' वे बोले—'तीस हजार रुपयोंके लिये एक गृहस्थका जीवन बर्बाद कर दें? उसके घरमें दस आदमी हैं, वे क्या खायेंगे? उसने किसी विपत्तिमें पड़कर ही ऐसा काम कर लिया है।' पर व्यापारी महोदय जहाँ इतने परदुःखकातर और दयाशील थे, वहीं बड़े व्यापारकुशल भी थे। उन्हें उक्त

रोकड़ियेकी दीन दशा पर दया आयी, साथ ही उसे रोकड़के काम पर रखना उचित भी नहीं समझा—इसलिये कि कहीं फिर ऐसा न कर ले। उन्होंने दो-एक दिन बाद रोकड़ियेको बुलाकर उससे पूछा—'तुम्हारा कितना वेतन है, भैया ?' 'सौ रुपये'—उसने कहा। 'सौ रुपयेसे कैसे काम चलता होगा ?' व्यापारी महोदयने कहा। 'तकलीफ ही रहती है, बाबूजी !' रोकड़ियेने रोते हुएकी तरह कहा। व्यापारी महोदय बोले—'अच्छा ! देखो, रोकड़के काममें तो वेतन बढ़ाया नहीं जा सका। तुम अमुक दूसरे कामको सँभालो। आजसे तुम्हारा वेतन डेढ़ सौ रुपये कर दिया गया।' व्यापारी महोदयने शेयरोंके बाबत उससे एक शब्द भी नहीं कहा। इस उदारताको देखकर सब लोग दंग रह गये।

—:●:—

गोदुग्ध अमृत है

मैं एक एलोपैथिक चिकित्सक हूँ। मेरे पास एक महिला, जो सरकारी कर्मचारिणी हैं, इलाजके लिये आयीं। इन्हें सभी अच्छे डाक्टरोंने एक्सरेद्वारा तथा स्वयं मैंने भी तपेदिककी बीमारी बतायी, जिसमें दोनों फेफड़ोंमें व्रण हो गये थे। कई एक अस्पतालों-ने तो उन्हें आखिरी स्टेज होनेके कारण भरती भी नहीं किया और घर जाकर मरनेकी अनुमति दी।

वे निराश होकर मेरे पास आयीं और बोलीं—'मेरा शरीर सैकड़ों इनजेक्शनोंसे जर्जर हो गया है और खर्च तथा गरीबीके कारण मेरी नाकमें लौंग भी नहीं रह गयी।' मेरा हृदय भी उनकी दुर्दशा देखकर द्रवित हो गया। मैंने भगवत्स्मरण किया और प्रार्थना की—'भगवन्! इनका कष्ट अवश्य दूर हो।' उनकी प्रेरणासे मैंने उन्हें गायका दूध, जितना पी सकें, पीनेको कहा तथा दो दवाइयाँ खानेको बतायीं। उन्होंने एक गाय खरीदकर उसकी सेवा करना शुरू किया तथा एक सेर दूध प्रातः, एक सेर संध्याको पीने लगीं। १५ दिनोंके भीतर उनका स्वास्थ्य काफी सुधर गया तथा बुखार-खाँसी सब गायब हो गये। दो मासमें वे बिल्कुल स्वस्थ हो गयीं और अबतक सरकारी काम कर रहीं हैं। बीमारीसे पहले उनके तीन पुत्रियाँ थीं। उसके बाद उनके एक पुत्ररत्न हुआ जो पूर्ण स्वस्थ है।

यह है गोमाताकी कृपा तथा उनके दूधका महत्त्व।

मैंने जिन-जिन भीषण रोगोंके रोगियोंको गोदुग्ध दिया, वे सब स्वस्थ हो गये, खास तौरपर क्षयरोगमें।

समस्त वैद्यसमुदाय तथा ऐसे रोगियोंसे प्रार्थना है कि वे इसका अनुभव करें और लाभ उठायें।

—डा० श्याममोहन कपूर

—:●:—

दरिद्रता और मनुष्यता

मानवके लिये दरिद्रता एक अभिशाप है। एक उच्चकुलोत्पन्न मनुष्य भी इस पिशाचिनीके हथकंडेमें पड़ किंकर्तव्यविमूढ़ और पथभ्रष्ट हो जाता है एवं कुलको बट्टा लगानेवाले, अशोभनीय कुकर्म कर बैठता है। यह सब विधिकी विडम्बना है। ऐसी ही एक घटना गत दीपावलीसे पहली दीपावलीके ठीक चार दिन पहले अर्थात् ता० २९।१०।५६ को हमारे यहाँ घटी। शामके साढ़े सात बजे होंगे। दीपावलीकी सज-धजके लिये सफाई की जा रही थी, सामान सब इधर-उधर बिखरा पड़ा था। सब अपने-अपने काममें लगे हुए थे। मैं भी बाबुलनाथके दर्शन करके पेढ़ीपर आया ही था कि अचानक एक अजीब दृश्य मेरी आँखोंके सामने आया। देखता क्या हूँ कि हमारा पटेल रघुवीर एक अज्ञात नौजवानसे सीढ़ियोंके पास छीना-झपटी कर रहा है। पटेल कह रहा था कि मेरे देखते तू यहाँसे दरी चुराकर नहीं ले जा सकता। हम सबका ध्यान तुरंत ही उधर गया। वह मनुष्य इकहरे बदनका श्यामवर्ण, स्वच्छ एवं नवीन वस्त्र धारण किये, पैरमें नयी चप्पल पहने, बालोंमें कंघा किये, विषपूर्ण कनक-घटके समान वाणीमें अमृतका मिठास भरे हुये था। आधुनिक हिन्दीमें बोल रहा था।

इतनेमें ही बड़ी बहादुरीसे उसे हमारा पटेल पेढ़ीके अंदर ले आया और चारों ओरसे उसपर थप्पड़ और मुक्कोंकी बौछारें होने लगीं। कारण स्पष्ट था कि वह रँगे हाथों पकड़ा गया था। उसने

एक बड़ी खासा लंबी-चौड़ी दरी, जिसकी कीमत आजके दिन कम-से-कम ४०), ५०) रुपये तो होगी ही, चुरायी थी।

'दूसरे मालेके सेठने दी है'—कहकर उसने झूठी दलील पेश की। किन्तु यह सफेद झूठ कैसे चल सकती थी। जो भी आया, सबने अपनी सामर्थ्यभर उसे धिक्कारें दीं और कुछने गालियाँ बककर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझी। चित्त लेटकर मार खाते हुए ही करबद्ध उसने सभीसे विनती करके अपनी दयनीय दशाको चित्रित करनेका मिथ्या प्रयास किया।

वह कहता ही गया—'मुझे मारो, खूब मारो; मैंने यह जघन्य, निन्दनीय कुकर्म किया है—चोरी की है। मुझे पता है कि मैंने बुरा काम किया है, दूसरेकी वस्तु चुरानेकी अनधिकार चेष्टा की है; किन्तु यह सब इस पापी पेटके लिये। मेरे बच्चे, स्त्री—सब भूखे पड़े बिलख रहे हैं। अन्य कोई उपाय न देखकर मुझे इस दुष्कर्मकी ओर झुकना पड़ा। मैं भी एक उच्च मुल्तानी घरानेमें उत्पन्न हुआ पढ़ा-लिखा व्यक्ति हूँ, एक अच्छे फर्ममें काम कर रहा था। पर दुर्भाग्यवश मैं वहाँसे हटा दिया गया। अब बेकार इधर-उधर कामकी खोजमें फिरता रहा हूँ। निराश होकर पेटकी नित्य-प्रतिकी ज्वालाकी पूर्तिके लिये आज यह काम किया है।'

किसीने आवाज दी—'पुलिसमें दे दो!' 'मैं बहुत लाचार हूँ, मुझे पुलिसमें मत दो; मेरे निर्दोष बच्चोंकी ओर देखो; उनपर दया करो……मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, ईश्वरकी शपथ, मुझे पुलिसमें मत दो।' मैं उसके करुण-क्रन्दनको सुनकर अवाक् स्तब्ध खड़ा रह गया। क्रोध दयामें बदल गया। मैंने पेढ़ीवालोंसे कहा—'अच्छा हो, आप सेठजीको इस घटनासे अवगत करा दें और उनके

आज्ञानुसार कार्य करें।' सेठजीको फोनपर सभी घटित बातें बतलायी गयीं। क्षमाशील, कृपालु हमारे सेठजीने घटित बातोंपर पर्दा डालते हुए तुरंत उत्तर दिया—'जाने दो; उससे कहो कि आगे ऐसा कुकर्म न करे, मजदूरी करके पेट पाले……।'

उस भूखे नादानने ईश्वरकी शपथके साथ इसे स्वीकार किया। पर मैं आज भी सोचता हूँ कि क्या उसने पेटकी ज्वालाकी विभीषिकाके रहते अपने वचनोंका ध्यान रक्खा होगा ? क्या सेठजी-का क्षमा-दान अपराधीके प्रति सही दण्ड या आदर्श बदला नहीं था ? कौन ऐसा समझदार व्यक्ति होगा, जो उनकी मानवताकी सराहना किये बिना रह जाय।

—बाबूलाल बसावेका, 'साहित्यरत्न'

—:●:—

कलेजेके अक्षर

गणेशचतुर्थीका दिन था। सबेरे लगभग आठ बजे थे। हाथ-मुँह धोकर सब चाय-पानीकी तैयारीमें लगे थे कि बाहरसे आवाज आयी। भाई साहबने जाकर दरवाजा खोला, देखते हैं दो बैलोंकी रास हाथमें लिये एक चिथड़ेहाल ग्रामीण बाहर खड़ा है।

'कैसे हो, भैया ?' दरवाजा खोलनेवाले भाई साहबसे बूढ़े ग्रामीणने पूछा। 'सब ठीक है।' संक्षेपमें ही भाई साहबने उत्तर दे दिया।

ब्याज-बट्टेका धंधा करनेवाले हमारे पिताजीके जीवनकालमें ऐसे कितने ही ग्रामीण हमारे यहाँ आया करते। इस बूढ़ेका आना भी कोई नयी बात नहीं थी, परंतु बैलोंकी जोड़ीको साथ देखकर कुछ नयी-सी बात लगी।

बैलोंको बाहर बाँधकर धीरे-धीरे बूढ़ा भीतर आया और देहलीके पास बैठकर बोला—'भैया ! बड़े बाबू मरते समय हमारे विषयमें कुछ कह गये थे क्या ?'

पिताजीकी मृत्यु अचानक हृदयकी गति रुक जानेसे हुई थी; इस छोटी-सी बातकी तो चर्चा ही क्या, बड़ी-बड़ी महत्त्वकी बातें बिना बताये रह गयी थीं। अतएव भाई साहबने कहा—'बड़े बाबूने तो तुम्हारे बाबत कुछ नहीं कहा।'

'उनके बहीखातोंमें कोई लिखावट है ?' फिर बूढ़ेने पूछा।

भाई साहबने तुरंत पिताजीके सब बहीखातोंको देख डाला, कहीं बूढ़ेके नामका कोई लेन-देन लिखा नहीं मिला। अतः उन्होंने कहा—'इनमें तो कहीं कोई लिखावट नहीं है।'

बूढ़ा जरा स्वस्थ होकर धीरेसे बोला—'भले भैया! बड़े बाबू खातेमें लिखना भूल गये। पर मैंने अपने कलेजेपर लिख रक्खा है। ये कलेजेके अक्षर कैसे मिट सकते हैं? तुम तो भैया! तब शहरमें पढ़ते थे, तुमको क्या पता। पर नहीं, परियार साल इसी गणेश चौथके दिन माँका कारज करनेके लिये मैं बड़े बाबूसे पाँच सौ रुपये ले गया था और इस साल गणेशचौथके दिन ब्याजसमेत कुल पाँच सौ और पचास रुपये लौटानेका मैंने वादा किया था। बड़े बाबू तो भगवान्‌के घर पहुँच गये, पर मेरा वादा थोड़े ही भगवान्‌के घर पहुँच गया। मुँहके बैन क्या कभी पलट सकते हैं?'

'न दस्तावेज, न लिखा-पढ़ी और न बहीखातोंमें कहीं उल्लेख। कानूनके अनुसार कोई भी प्रमाण नहीं, इतनेपर भी यह ग्रामीण बूढ़ा केवल मुँहकी बातपर पाँच सौ ही नहीं, ब्याजके पचास रुपये जोड़कर पाँस सौ पचास दे रहा है और वह भी जिनसे लिये थे, उन बाबूको नहीं, उनके उत्तराधिकारीको। जिला अदालत, हाई-कोर्ट, सुप्रीमकोर्ट और कायदे-कानूनके इस जमानेमें यह घटना कितनी आश्चर्यजनक है?'

'खूनी निर्दोष ठहरे और निर्दोष फाँसी चढ़े। लाखोंकी लूट लोप हो जाय और पावरोटी चुरानेवाला जेल जाय। कागजका टुकड़ा जो कहे, वह हो। मनुष्य तो मानो मनुष्य ही नहीं रहा। आँखों देखी बात झूठी साबित हो और कभी कल्पनामें भी न आने-

वाली बात सच्ची सिद्ध हो। कानूनकी दुनिया ही निराली है। झूठ, प्रपञ्च, अनीति और अनाचारका आश्रय लेकर कानूनके पंजेसे छिटक जानेवाला चालाक और प्रवीण माना जाय। जो वकील अधिक मात्रामें झूठ बोल-बुला सके, वह होशियार वतलाया जाय। सत्य तो मानो धरतीके उस पार ही जा छिपा! चार आने पैसोंके कानूनके अनुसार सही सिक्के बने—बस, मनुष्यका इतना भी मूल्य नहीं। यह है आजकी दुनिया और बस, यही है सुधार!' भाई साहबका मन विचार-सागरमें डूब गया।

'भैया! इन बैलोंको कहाँ बाँधूं?'—बैलोंकी रास खींचते हुए बूढ़ेने पूछा।

विचार-सागरमें डूबे भाई साहब कुछ कहें—इसके पहले ही बूढ़ेने फिर कहा—'यह मेरा मतवाली चाल चलनेवाला—अभी पिछले साल ही एक सिंधीसे सौ-सौ रुपयेके तीन ढेर लगाकर इसे लिया था और इस ललमुँहेको बीस मन बिनौले और दस मन गेहूँ देकर धन्ना सेठसे लिया था।' यों कहते-कहते बूढ़ेका गला भर आया, आँखें छलछला उठीं। मानो पैर टूट गये हों, वह वहीं ढुलक पड़ा। मालिकको संकटमें समझकर बैल उसे चाटने लगे। बूढ़ा भी धीरे-धीरे बैलोंको थपकाने लगा। तुरंत ही सारी हिम्मत बटोरकर बूढ़ा खड़ा हो गया और चौखटके पास पड़ी हुई अपनी लाठी हाथमें लेकर भाई साहबसे 'जै रामजीकी' करके चलते-चलते कहता गया—

'भैया! घबराना मत, बड़े बाबू नहीं हैं, पर उनका यह पुराना चाकर अभी जी रहा है। बड़े बाबूने मेरे बहुत ढाँकन ढके थे। उनका गुण कैसे भूला जा सकता है? इन बैलोंकी कीमत

साढ़े पाँच सौसे कम नहीं है। तो भी अगर पाँच सौ पचाससे कम रुपये उठें तो मुझे संदेसा भिजवा देना, मैं अपने हल और खेत बेच-कर भी पूरा कर्जा भर दूँगा।'

इतना कहकर बूढ़ेने अपने सगे पूत-सरीखे बैलोंकी ओर एक नजर डाली और चल दिया। उसके डग-डगपर हृदयकी वेदना बोल रही थी !

—श्रीजयन्ती साह

—:●:—

रूसी महिलाकी सज्जनता

मेरे एक मित्रके कपड़ेकी दूकान है, यह प्रसंग उन्हींसे सुना हुआ है। इसे उन्हींके शब्दोंमें लिख रहा हूँ—

हमारी दूकानसे एक रूसी महिलाने बहुत-सा कपड़ा खरीदा। उन्हें अपने पतिके लिये एक स्वेटरकी भी आवश्यकता थी। उन्हें वैसा स्वेटर बाजारमें नहीं मिला था। उन्होंने हमसे अनुरोध किया कि 'आर्डर देकर एक स्वेटर मँगवा दें।' मैंने पंद्रह दिनों बाद स्वेटर ले जानेको कहा।

ठीक पंद्रहवें दिन रूसी महिला आयीं। उन्हें देखकर मेरे होश उड़ गये; क्योंकि मैं उस बातको बिल्कुल भूल ही गया था। मैंने विनयपूर्वक सच्ची बात समझाकर कह दी। उन्होंने कुछ नाराज होते हुए कहा—'क्या तुम इण्डियन मेन! हमको दो-चार जगहसे ऐसा ही अनुभव मिला है।' मुझे दुःख और क्षोभ दोनों हुए। मैंने अब निश्चय ही मँगवा देनेको कहा और फिर पंद्रह दिन बाद आनेका अनुरोध किया। इन पंद्रह दिनोंमें मैंने कम्पनीके साथ पत्र-व्यवहार किया। कम्पनीको स्वेटरके सम्बन्धमें कुछ पूछना शेष रह गया था, अतः ठीक पंद्रहवें दिन स्वेटर नहीं आ सका।

पंद्रहवें दिन महिला फिर आयीं। मैंने अपनी परिस्थिति उनको समझा दी, उन्होंने मान लिया।

दो-तीन दिन बाद वे फिर मेरी दूकानपर आकर कहने लगीं—

'मैं रूस जा रही हूँ। मेरे पतिकी अकस्मात् मृत्यु हो गयी। मुझे यहाँ कोई खास काम नहीं था, केवल स्वेटरके लिये ही आपसे मिलने आयी हूँ। क्या स्वेटर आ गया ?'

मैंने उनके पतिकी मृत्युके लिये दुःख प्रकट करते हुए कहा— 'स्वेटर अभी नहीं आ सका है।'

उन्होंने कहा—'आपने आर्डर तो दे ही दिया, पैसे ले लीजिये।' मैंने इनकार करते हुए कहा— 'आर्डर कैन्सिल हो सकेगा। वे मेरी बात पर सहमत नहीं हो सकीं। बीस रुपये मेरी टेबलपर फेंककर वे सज्जन महिला तेजीके साथ सीढ़ियोंसे उतर गयीं; मैं उनकी सज्जनताको आँख फाड़े देखता ही रह गया।

—श्री ल० दे० राठौर

—:●:—

हककी छाछ

जेठका महीना है। भीषण गरमी पड़ रही है। जहाँ दुधारू गायें भी सूख गयी हों, वहाँ दूध तो क्या, छाछका मिलना भी कठिन है। इसी समय हमारे गाँवमें एक गृहस्थने छाछका सदावर्त खोला। छाछ गाँवका जीवन है। अतः इस छाछ-सत्रकी बड़ी प्रशंसा हुई। सब ओर आशीर्वाद मिलने लगे।

हमारे पड़ोसमें एक कोलीका घर है। उस घरकी बहिन एक दूसरे पड़ोसीके यहाँसे छाछ लाती और बदलेमें पड़ोसीके पानी भर देती, अनाज पीस देती अथवा गोबर थाप देती।

एक दिन मैंने उससे कहा—'बहिन! तुम सदावर्तकी छाछ क्यों नहीं लाती? वह तो बहुत गाढ़ी और अच्छी होती है। हम भी लाया करते हैं, फिर तुम्हें क्या आपत्ति है?'

'भाई! बड़ी भारी आपत्ति है। वह धर्मादा है। उसका पावभर पानी भी हकका नहीं है। मेहनत किये बिना खायें तो प्रभु राजी न हों। थोड़ा-बहुत काम करनेपर पतली छाछ भी मिल जाय तो अच्छा है। वह पेटमें पचेगी और लाभ करेगी।'

उस बहिनकी बात सुनकर मैं दंग रह गया। इस बहिनको अज्ञान कैसे कहें। बहुत लोग कोली स्त्रियोंको मूर्ख—अबोध मानते हैं; परंतु उनका सिद्धान्त कितना ऊँचा है—यह जाननेका किसीको अवकाश नहीं है।

मेरा अहं टूट गया और बिना परिश्रमके ग्रहण करना पाप है—इस सूत्रको जीवनमें उतारनेवाली बहिनने मुझको सचोट बोध प्रदान किया, प्रेरणा दी।

—इच्छाशंकर पंड्या

—: ● :—

हर्षका सागर उमड़ पड़ा

कुछ वर्ष पहलेकी बात है—गंगातटपर बसे हुए एक बहुत बड़े नगरमें नवयुवक मित्र गंगास्नान करने जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें कीचड़में कोई चमकती हुई चीज दिखलायी दी। उन्होंने कौतूहल-वश कीचड़से उस चीजको निकालकर देखा तो वह बहुत वहुमूल्य हीरेका हार था—कम-से-कम एक लाख रुपये मूल्यका। वे दोनों स्वयं पहले धनी घरानेके थे, उन्हें हीरों की पहचान थी। उनमेंसे एक मित्र वहुत अधिक अर्थसंकटमें था। उसने कहा—'भाई! मालूम होता है भगवान्‌ने मेरी पुकार सुन ली। इसीसे तो यह वहुमूल्य हार मिला है। आज ही इसे ले जाकर तुड़वा लेंगे और हीरे बम्बई ले जाकर बेच देंगे। हमलोगोंका बहुत वड़ा संकट टल जायगा।' दूसरा मित्र भी अर्थसंकटमें था, पर वह बोला, 'भैया! पराये धनपर मन चलानेसे कभी संकट दूर नहीं होगा। जरा सोचो तो, कोई बहिन गंगास्नानको जाती हुई इसे गिरा गयी होगी, वह घर जाकर हार सँभालेगी और नहीं मिलेगा तो उसके चित्तको कितना भारी दुःख होगा। फिर, पराया धन कभी लाभदायक भी नहीं होता तथा वह टिकता भी नहीं। अतएव भैया! मैं तो घर जाते ही कपड़े पहनकर किसी समाचार-पत्रके दफ्तरमें जाऊँगा और उसमें यह सूचना छपवाऊँगा कि 'हमें एक हार मिला है; जिनका हो, वे प्रमाणित करके ले जायँ। या इसे मारवाड़ी असोसियेशनमें जमा करा दूंगा, वे लोग पता लगाकर जिनका होगा, उन्हें दे देंगे।'

पहले मित्रको बात तो कुछ जँची; पर उसके मनमें लोभ था और वह समझ रहा था—सहज ही जब संकट टलनेका साधन मिल गया है, तब इसे क्यों छोड़ा जाय ! अतएव कई तरहके युक्तिपूर्ण तर्क उपस्थित करके उसने मित्रको समझानेकी चेष्टा की; पर वह नहीं माना और आखिर यही निश्चित हुआ कि चलकर अखबारोंमें सूचना छपवायी जाय।

वे गंगास्नानका विचार छोड़कर घरकी ओर मुड़ गये। थोड़ी ही दूर गये थे कि देखते हैं एक अधेड़ उम्रका पुरुष तीन-चार आदमियोंको साथ लिये कीचड़में किसी चीजको खोज रहा है। बड़ा परेशान है। उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं, चेहरेपर गहरी उदासी छायी है। दोनों मित्रोंने उसको देखा और सोचा कि शायद यह हार ही खोजा जा रहा होगा।' उनमेंसे एकने आगे बढ़कर पूछा—'बाबू ! आप क्या खोज रहे हैं, क्या आपकी कोई चीज खो गयी है ? आप इतने उदास क्यों हैं ? उसने यह बात सुनकर सिर पीट लिया और कहा—'भाई ! क्या बताऊँ, मैं बेमौत मारा गया ! गजब हो गया। हार न मिला तो मुँह नहीं दिखाऊँगा—आत्महत्या कर लूँगा; पर क्या होगा—आत्महत्यासे ? मेरा कलंक थोड़े ही उतरेगा। हाय !' इतना कहकर वह पुनः खोजमें लग गया। इसपर इन मित्रोंने फिर पूछा, तब उसने कहा—भाई ! बतानेसे क्या होगा; हमलोग भी पहले पैसेवाले थे। आज बहुत गरीब हालतमें हैं। मेरी एक लड़की अमुक करोड़पतिके यहाँ अमुक स्थानमें ब्याही है। हम धनी थे, तब तो परस्पर बड़ा प्रेम था। पर अब तो हम उनके प्रेमके नहीं, घृणाके पात्र हैं। यही नहीं, उनकी दृष्टिमें चोर हैं। धनियोंकी दृष्टिमें गरीब चोर ही होता है। देखिये, मेरी लड़की-

का गहना हमारे यहाँ पड़ा था, उसे उन्होंने मुझपर अविश्वास करके —यह समझकर कि कहीं यह गहना बेचकर खा न जाय, चालाकीसे मँगवा लिया। मुझे कोई दुःख नहीं था। उनकी चीज उनके पास रहे। मैं तो बड़ी जोखिमसे बचा। वे मेरी लड़कीको भी मेरे यहाँ भेजनेमें अविश्वास मानकर, अपनी तौहीन समझकर आनाकानी करने लगे। मुझ मुफलिसके घर करोड़पतिकी वह लाला कैसे आ सकती है। लड़कीकी माँका बुरा हाल था। मैंने बड़ी आरजू-मिन्नत की तो उन्होंने मेरी लड़कीको पाँच-सात दिनोंके लिये भेजनेका इकरार करा लिया कि सात दिनके बाद उसे वापस भेज देना पड़ेगा। यहाँतक कि रेलके टिकट भी रिजर्व करा लिये गये।

लड़कीको आये पाँच दिन हुए हैं, आज बहुत तड़के ही वह अपनी माँके साथ गङ्गास्नानको आयी थी। रास्तेमें कहीं उसके गलेका हीरेका नेकलेश (हार) गिर गया। मैं तबसे खोज रहा हूँ, पर मिल नहीं रहा है। हार न मिला तो वे यही समझेंगे कि लड़कीको फुसलाकर मुफलिस माता-पिताने हार हड़प लिया है। पता नहीं वे मेरी भोली लड़कीको क्या-क्या कहेंगे, कैसी-कैसी गालियाँ देंगे। मुझे तो चोर-डाकू समझेंगे ही। अच्छा होता, लड़की घर आती ही नहीं। हाय! अब मैं क्या करूँ?'

उसकी दीन दशा देखकर दोनों मित्रोंको बड़ी दया आयी। उन्होंने सोचा—हो-न-हो, हार इन्हींका है। उन्होंने कहा—बाबू! आप घबराइये नहीं। भगवान् किसी ईमानदार तथा सच्चे पुरुषपर कलंक क्यों लगने देंगे? एक हार हमें रास्तेमें मिला है। अभी कीचड़में सना है। आप घर चलिये—वहाँ आपकी लड़की हार

देखकर पहचान लेगी तो आप और हम उसे लेकर उसके ससुराल चलेंगे और सारी बातें उनको समझा देंगे। यों कहकर उन्होंने हार दिखलाया। हार देखते ही वह नाच उठा, अब उसकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी धारा बह चली। वह गद्गद होकर उन दोनों मित्रोंके चरणोंमें लिपट गया। आम रास्ता था, लोग इकट्ठे होने लगे। तब उन मित्रोंने हो-हल्लेसे बचनेकी नीयतसे हार जेबमें डाला और उस सज्जनको साथ लेकर वे उसके घर पहुँचे। घरमें कुहराम मचा था। लड़कीकी माँ बुरी तरह रो रही थी और बेटी पास बैठी उसे समझा रही थी।

इतनेमें ही लड़कीके पिताने आकर रोते हुए कहा—'बेटी! रो मत। दो देवता आये हैं—तेरा हार लेकर। देख, हार पहचान और इनके चरणोंमें नमस्कार कर।' हार पहचान लिया गया। उन गृहस्थ-दम्पतिके सुखका क्या ठिकाना। उनका रोम-रोम उन दोनों मित्रों को आनन्दाश्रुओंके साथ कृतज्ञतापूर्ण आशीर्वाद दे रहा था। वे दोनों भी बड़े ही प्रसन्न थे। उन्हें अर्थसंकटसे मुक्त होनेपर कैसा क्या सुख मिलता, सो तो अलग बात है, पर इस दृश्यको देखकर तो उनके हृदयमें हर्षका सागर ही उमड़ रहा था।

—विद्यानन्द

—:●:—

माँगने आये कि देने ?

कुछ वर्षों पहले की घटना है। एक बड़े व्यापारी सज्जन, जिनके बड़ा कारोवार था, जो प्रसिद्ध उदार तथा दानी कहलाते थे, अपने घरके बाहरके हिस्सेकी आफिसमें बैठे फाइलोंको देख रहे थे। इतनेमें बाहरसे दरवानने आकर कहा—'बाबूजी ! बाहर एक सज्जन खड़े हैं, मिलना चाहते हैं।' बाबूजी मनमें बहुत कुढ़े, बोले—'ये माँगनेवाले जरा भी दम नहीं लेने देते, सुबहसे ही आने लगते हैं !' पर अपनी सभ्यताकी रक्षा करनेके लिये बोले—'अच्छा भेज दो।' दरवान लौट गया और एक सादी पोशाकका सुन्दर नवयुवक अंदर आ गया। बाबूके संकेतसे वह एक कुर्सीपर बैठ गया। बाबूने फाइलोंसे जरा दृष्टि हटाकर रूखे स्वरमें पूछा—'क्यों कैसे आये ? क्या काम है ? आजकल तो मैं तंग आ गया हूँ। ये माँगनेवाले कभी भी आरामसे काम नहीं करने देते ? आप किस कामसे आये हैं, बताइये।' आगन्तुक तरुणने मुसकराते हुए कहा—'बाबू ! मैं तो माँगने नहीं आया हूँ, मैं तो एक विशेष कामसे आपके पास आया हूँ। आपसे कुछ जरूरी बात कहनी है।' फिर दोनोंमें निम्नलिखित बातें हुईं—

बाबू—बोलिये तो, क्या बात करनी है ?

आगन्तुक तरुण—दो साल पहले आपके··कारखानेका राजेन्द्र

नामक एक आदमी चोरीके अपराधमें पकड़ा गया था। उसे साल-भरकी जेल हो गयी थी, आपको याद है न?

बाबू—(बिना रुख जोड़े) हाँ, याद है!

तरुण—क्या यह भी याद है कि आपने उसको निर्दोष जानते हुए भी स्वार्थवश रिश्वत देकर वकीलोंपर पैसा खर्चकर तथा अन्यान्य प्रकारसे प्रयत्न करके जेल भिजवाया था और फिर वह अपीलमें छूट गया था।

बाबू—(जरा कड़े स्वरमें) हाँ, किया होगा।

तरुण—तो बाबू, वह राजेन्द्र मैं ही हूँ।

बाबू—(कुछ डरे हुए, कुछ तमतमाते हुए) तो क्या बदला लेने आये हो?

तरुण—हाँ, आया तो हूँ बदला लेने ही।

बाबू—तो क्या करोगे?

तरुण—आप खातिर रखिये, मैं आपको मारूँगा नहीं, केवल आपसे दो बातें कहकर चला जाऊँगा।

बाबू—(नरम होकर) अच्छा, तो कहो।

तरुण—जिन लोगोंके कहनेसे आपने स्वार्थवश उस समय मुझको जेल भिजवाया था तथा जिनके साथ मिलकर आपने पीछे बहुत बड़ा अवैध कारोबार किया था, उनसे साझेदारीको लेकर आपसे झगड़ा हो गया था—यह तो आप जानते ही हैं। अब मुझे उनके एक भयानक षड्यन्त्रका पता लगा है और मैंने अच्छी तरहसे

सारी जाँच-पड़ताल कर ली है, तब आपको सावधान करने आया हूँ। बात यह है कि उन लोगोंने उस कामपर तथा उसमें लगी सारी पूँजीपर अपना पूरा अधिकार कर लेनेकी इच्छासे आपको संसारसे उठा देनेकी पूरी व्यवस्था कर ली है। इसके प्रमाणमें अमुकके हाथका अमुकके नाम लिखा हुआ यह पत्र है। आप हस्ताक्षर पहचानते ही हैं। (इतना कहकर उसने पत्र पढ़वाया और फिर कहा—)कल रातको आपको जो दावत देनेकी व्यवस्था की गयी है; वह उन्होंने ही उस असुक व्यक्तिको लालच देकर करवायी है, जिसको आप अपना मित्र माने हुए हैं। दावतके बाद ही आपको समाप्त कर देनेकी योजना है। आपने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया था, परंतु मेरा यह सिद्धान्त है—मुझे गुरुजीने यह कहा था कि तुम्हारा बुरा तुम्हारे प्रारब्धके बिना कोई कर नहीं सकता। करना चाहता है तो वह अपना ही बुरा करता है—इसलिये वह दयाका पात्र है, क्रोधका नहीं।' अतएव मुझे जब पता लगा और पक्का प्रमाण मिल गया तब मैं आपको सूचना देने आ गया। आप बचनेकी व्यवस्था कर लें। अच्छा ! अब मैं जाता हूँ। आपके शत्रुओंको कहीं यह पता लग गया कि मैंने आपको इसकी सूचना दी है, तो वे मुझे मारे बिना नहीं छोड़ेंगे। मैं अपनी जानपर खेलकर इसीलिये आपके पास आया हूँ कि यही मेरा पुनीत कर्तव्य है। (यों कहकर वह चल दिया।)

बाबूजी आँख फाड़े देखते रह गये। सोचने लगे, 'कहाँ मैं नीच स्वार्थवश झूठे मुकदमेमें फँसाकर निर्दोष नवयुवकको जेल भिजवानेवाला और कहाँ यह महान् उच्च हृदयका नवयुवक, जो मुझ नीच, नराधमको मृत्युसे बचानेके लिये जानपर खेलकर मुझे सावधान

करने आया है ? मैंने इसको माँगनेवाला समझकर इसका तिरस्कार किया था, पर यह तो मुझे प्राण-दान करने आया है ।'

बाबूके हृदयमें पश्चात्ताप, दैन्य, कृतज्ञता, सत्पुरुषमहिमा और ईश्वर-कृपा आदि अनेकों भावोंकी विविध तरंगें उठने लगीं। षड्यन्त्रकी बात सच्ची थी ही । सारी व्यवस्था हो गयी, षड्यन्त्र-कारी पकड़े गये और उन्हें यथायोग्य दण्ड भोगना पड़ा ।

—सोहनलाल गुप्त

—: ● :—

'राखे राम तो मारे कौन ?'

"यह घटना अनुमानतः पंद्रह-सोलह वर्ष पूर्वकी है। जिस स्थानकी यह घटना है, भारतवर्षका वह हिस्सा अब पूर्वी पाकिस्तान-में है। बरीसाल जिलान्तर्गत 'भोला' नामक द्वीपमें हमलोग व्यापार-के निमित्त सपरिवार रहा करते थे।

"एक दिन रात्रिमें हमलोग अपनी दूकानमें बैठे हुए थे। रात्रिके नौ बजे होंगे, बरसातके दिन थे। जोरोंसे वर्षा हो रही थी, कुछ-कुछ तूफान भी आ रहा था। हमारे यहाँ सुपारीका व्यापार होता था। मजदूर लोग रातको ग्यारह-बारह बजेतक उस काममें लगे रहा करते थे।

"उस रात्रिकी घटनाके वर्णन करनेके पूर्व यह बतला देना अत्यन्त आवश्यक है कि मैंने अपने बाल-बच्चोंको कुछ दिन पूर्व ही कलकत्ते भेज दिया था। हमारी दूकानके पीछे ही गोदाम बने थे, वहींपर मजदूर काम किया करते थे। 'भोला' में सभी मकान टीनों-के ही बना करते थे—दीवार भी टीनोंकी एवं छप्पर भी टीनोंके ही।

"पानी तो अकसर बरसा ही करता है। इसमें कोई खास बात नहीं थी। थोड़ी ही देर बाद मजदूरोंका सरदार आया और कहने लगा कि गोदामोंमें नीचेकी ओरसे पानी आना शुरू हो गया है। इसपर हमलोग सोच ही रहे थे कि क्या करें। इसी बीचमें बड़े जोरोंकी साँय-साँयकी आवाज आने लगी। सरदारने कहा—

तूफान बड़े जोरोंसे आ रहा है, एवं साथ ही देखा गया तो जिस दूकानमें हमलोग बैठे थे, उसमें भी नीचेसे पानी आना प्रारम्भ हो गया। पानीका वेग क्रमशः बढ़ रहा था, कुछ भी उपाय समझमें नहीं आ रहा था। बुद्धि भी काम नहीं दे रही थी। जैसे-जैसे पानी बढ़ने लगा, अगल-बगलके सैकड़ों लोग भी हमारी दूकानमें आने लगे; क्योंकि उन सबके मकानोंसे हमारा मकान काफी मजबूत था। देखते-ही-देखते पानी घुटनोंतक आ गया।

"अब तो सब लोगोंने प्रायः प्राणोंकी आशा छोड़ दी और बचावका उपाय सोचने लगे। तूफान इतना भयंकर था कि आस-पासके मकानोंकी टीनें उड़-उड़कर गिरने लगीं, नारियल और सुपारीके बड़े-बड़े पेड़ भी टूट-टूटकर गिरने लगे। प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। उधर बाढ़का पानी कमरसे थोड़ा ही नीचे रह गया। यह सब इतनी शीघ्रतासे हुआ कि कठिनतासे बीस मिनट समय लगा होगा। किसी-किसीने दूकानपर बनी हुई लटानपर चढ़ जानेकी सलाह दी। लेकिन तूफान और बाढ़के जलका इतना वेग था कि किसी भी समय दूकान-गृह टूट सकता था।

"सब लोग सच्चे हृदयसे भगवान्‌को पुकारने लगे। अब तो जीवनका अन्तिम क्षण उपस्थित था। मेरे मनमें अब भी माया छा रही थी। मैंने सारे बहीखाते तिजोरीमें बन्द कर दिये और उपस्थित लोगोंसे कहा कि 'आप लोगोंमेंसे यदि कोई जीवित रहे तो हमारी खोजमें हमारे घरसे जो लोग आयें, उन्हें कह देना कि बहीखाता सब इस तिजोरीमें ही है।'

"इसके बाद फिर सब लोग भगवान्‌का नाम-कीर्तन करने लगे।

इतनी देरमें जैसे मुझे कुछ संकेत मिला। थोड़ी ही दूरपर हमारे एक परिचित एवं मित्र उत्पल बाबू वकील रहा करते थे। उनका मकान ईंट-चूनेसे दुमंजिला बना था और काफी मजबूत था। हमने सोचा, उत्पल बाबूसे हमारा इतना मेल है, क्या इस संकटके समय वे हमको शरण नहीं देंगे ? कुछ संकोचके साथ ही हमने उनके दो-मंजिले मकानपर जानेकी ठान ली और उपस्थित सब लोगोंसे भी हमने चलनेके लिये कहा। हम सब लोग साथ-साथ चले।

"कमरतक पानीमें, नंगे पैर, जमीनपर लोहे-लक्कड़, टीनोंका ढेर पार करते हुए, सिरपर बारिस और तूफानका वेग सहते हुए करीब चार फर्लांगकी दूरीपर हमलोग उत्पल बाबूके मकानपर किस तरह सकुशल पहुँच गये, यह भगवान् ही जानें। उस बातका जब स्मरण होता है, तब अब भी बदनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"उत्पल बाबूने हमलोगोंका स्वागत किया। हम तो संकोचके साथ ही उनसे प्रार्थना करनेवाले थे कि 'आप इस संकटमें हमको आश्रय दीजिये।' परन्तु इसका उन्होंने मौका ही नहीं दिया। हमारे पहुँचते ही उन्होंने एक नयी धोती और नयी बनियान लाकर मुझको दी और कहा—'आप कपड़े बदल डालिये।' मैंने उनसे बहुत ही विनय की कि 'आप इतना कष्ट न कीजिये, आपकी इतनी दया ही यथेष्ट है।' किंतु वे कब माननेवाले थे। आखिरकार कपड़े बदल मैं एक कुर्सीपर बैठ गया एवं इष्टदेवका स्मरण करने लगा। नाना प्रकारके विचार मेरे मानसपटपर सिनेमाके चित्रोंकी तरह आ-जा रहे थे। मैं सोच रहा था, 'कल मैं क्या था और आनेवाले सुबह मैं क्या हो जाऊँगा ? पानी उतर भी गया तो मैं बिना पैसे-कौड़ी कैसे

कलकत्ते पहुँच पाऊँगा ? क्या जहाजवाले मुझे विना टिकटके ले जायँगे, हालाँकि इस जहाज कम्पनीने आजतक मेरा माल ले जाकर काफी रकम उपार्जित की है। कल मैं खाऊँगा भी क्या ? क्योंकि सभी चीजें पानीमें बह गयी होंगी इत्यादि-इत्यादि' तरह-तरहके विचारोंका द्वन्द्व चल रहा था।

"अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ भगवान्की महत्ताको क्या जाने ! जानता होता तो अपने लिये या अपने निर्वाहके लिये इतना चिन्तन न करके उन मंगलमय प्रभुका ही चिन्तन करता, जो सव कष्टोंको मिटानेके लिये सदा कटिबद्ध रहते हैं।

"धीरे-धीरे पौ फटने लगी। बर्षा भी रुक गयी, तूफान भी शान्त हो गया एवं प्रकाश भी होने लगा। छतपर जाकर देखा तो वड़ा प्रलयकारी दृश्य देखा जा रहा था।

"बाढ़का पानी उतर चुका था। चारों ओर हृदयविदारक दृश्य था। टूटे घर, दरवाजे, विखरे टीनोंके छप्पर, धराशायी वृक्षोंके ढेर आदि चारों ओर नजर आ रहे थे। यह पहचानना कठिन था कि कौन-सा घर किसका है; क्योंकि छतोंपर छप्पर शायद ही किसी मकानपर वचा था।

"अब विचार हुआ कि किसी मनुष्यको भेजकर पता लगायें कि हमारे घरका क्या हाल है। वहाँ एक गाय भी अपने वछड़ेके साथ बँधी थी और भी दो-तीन आदमी वहाँ रह गये थे। एक आदमीको भेजा गया। करीव दो घंटे वीत गये, वह वापस नहीं लौटा। जब कि दूरीके हिसाबसे पंद्रह मिनटमें ही उसे लौट आना चाहिये था। फिर दूसरा आदमी भेजा गया, वह भी नहीं लौटा।

कारण कुछ समझमें नहीं आ रहा था। निश्चय करनेके लिये हम-लोग सब-के-सब दूकानकी ओर चले। जिस रास्तेको तय करनेमें दस मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगना चाहिये था, वह रास्ता डेढ़ घंटेमें तय कर पाये; क्योंकि रास्ता कहीं था ही नहीं। सब जगह घर-दरवाजोंके टूटे-फूटे हिस्से, पेड़, कूड़ा-करकट आदि पड़े थे। जमीन कहीं दिखायी ही नहीं दे रही थी।

"यही कारण था कि पहले जिन दो व्यक्तियोंको भेजा गया था, वे किसी तरह गन्तव्य स्थानतक पहुँच तो गये, परन्तु वापस आना उनके वशकी बात नहीं थी।

"जाकर देखा तो हमारे घर-दरवाजे तो सही-सलामत थे, परंतु एक बछिया मर गयी थी और बाढ़के पानीसे सारा माल भीग गया था। सामान सब मौजूद था, किंतु सब भीगा हुआ।

"अब चिन्ता हुई कि पेटकी ज्वालाको कैसे शान्त किया जाय, क्योंकि पानीसे सब कुछ बह गया था। पीनेका शुद्ध जल भी मिलना कठिन था। तालाब सब बाढ़के पानीसे भर गये थे एवं वहाँ तालाब-का पानी ही पीनेके काम आता था। परंतु भव-भयहारी परमात्मा-ने सब व्यवस्था कर रक्खी थी। एक मिट्टीके मटकेमें करीब एक मन चावल था, जो पानीपर तैरता रह गया एवं कमरेके दरवाजे बन्द होनेके कारण बाहर बहकर नहीं निकल पाया। सब लोगोंने उसीमेंसे चावल बनाकर भोजन किया। एवं शहरके सरकारी तालाबके कितारे काफी ऊँचे थे, इस कारण उसमें बाढ़का पानी नहीं जा सका था। अतः उसका पानी पीनेको मिल गया।

'धीरे-धीरे स्थिति सुधरने लगी। सरकारी सहायता भी

पहुँचने लगी, अन्य संस्थाएँ भी आयीं। खबर पाकर कलकत्तेसे हमारे घरसे भी लोग आये। इतना बड़ा प्रलय हुआ; किंतु जैसे कोई आँच ही न आयी हो, ऐसा लग रहा था। इतनी बड़ी घटना-को देखते हुए हानि कुछ भी नहीं थी। एक बछियाकी दुःखद घटनाके अतिरिक्त गृहहानि, मनुष्यहानि, अर्थहानि कुछ भी नहीं हुई। अर्थहानि इसलिये नहीं समझी गयी कि उक्त घटनाके कुछ दिनों बाद ही जो वस्तुएँ बाढ़के जलसे भीग गयी थीं, उनका मूल्य बढ़ता गया एवं सब माल ऊँचे दामोंमें बिक गया। यह सभी भगवान्‌का विधान था। सबसे बड़ी कृपा तो यही थी कि हमने बाल-बच्चोंको कुछ दिन पहले ही कलकत्ते भेज दिया था। वे होते तो सम्भवतः काफी कष्टका सामना करना पड़ जाता एवं सबके प्राणोंकी रक्षा होना भी सम्भव न होता।

"हमलोग इस भीषण रात्रिमें कैसे उत्पल बाबूके यहाँ पहुँच गये एवं कैसे वे चावल बाढ़से अछूते बच गये? कैसे सरकारी तालाबका पानी शुद्ध बचा रह गया? इन बातोंका अब भी जब स्मरण होता है तब विश्वके रक्षक, दीनदयालु परमात्माकी दयाका कोई पार नहीं मिलता।'

—रामजीवन चौधरी

—:●:—

प्रार्थनाका सुफल

लगभग साढ़े नौ वर्ष पहलेकी वात है। मेरे पतिकी मृत्युके वाद मैं सर्वथा अकिंचन हो गयी थी। उस समय मेरी उम्र ५१ वर्षकी थी और मैंने कभी अपनी जीविकाके लिये कुछ कमाया न था। मुझे वड़ा भय हो गया। मेरा हृदय भयसे भर गया। मुझे नींद हराम हो गयी। मैं रातों जाग-जागकर सोचा करती 'मुझे क्या करना चाहिये ?' अनिद्राके कारण मेरी स्थिति और भी विगड़ने लगी।

"मैंने अनुभव किया कि सबसे पहले मुझे इस भयसे छुटकारा पाना चाहिये। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान्से प्रार्थना करने लगी कि वे मेरे भयको मिटा दें। तीन सप्ताहके पश्चात् मेरे हृदय-में पूर्ण शान्ति और स्थिरता आ गयी। मेरा सारा भय जाता रहा।

अब मैंने ईश्वरसे यह प्रार्थना की कि वे मुझे काम पानेके लिये ठीक स्थानपर पहुँचा दें। एक दिन वड़ी वर्षा और आँधी आ रही थी, उस दिन मुझे किसीसे भी मिलने नहीं जाना चाहिये था। पर मेरे अंदर प्रेरणा हुई कि मैं आज ही जाकर अमुक सज्जन-से मिलूँ। मुझे पता ही न था कि कामके लिये कहीं कैसे दरख्वास्त देनी चाहिये और पहलेसे मिलनेका समय निश्चित करा लेना चाहिये। मैं जव उन सज्जनके कार्यालयमें पहुँची, तव उनके सेक्रेटरीने मुझे वताया कि वे विना पहलेसे समय निश्चित किये कभी किसीसे नहीं मिलते। जो कुछ भी हो, मैंने सेक्रेटरी महोदय-

के द्वारा अंदर कार्ड भिजवाया। मुझे तुरंत बुला लिया गया और वे मेरे साथ अच्छी तरहसे मिले। पहली बात उन्होंने यह कही कि 'तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जो तुमने इस पानी बरसते दिनको मिलनेके लिये चुना (यद्यपि मैंने नहीं चुना था, यह तो ईश्वरने ही चुना था); क्योंकि आज ही मैं बाहर जानेवाला था, पर बरसातके कारण रुक गया। उन्होंने फिर कहा कि 'तुम बहुत ठीक समयपर पहुँची; क्योंकि मैं अभी अपनी संस्थाके लिये कुछ नये लोगोंकी नियुक्ति करनेवाला था!' उन्होंने मुझे उसी समय काम दे दिया और तबसे मैं वहीं काम कर रही हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इस लेखसे उन लोगोंको सहायता मिलेगी जो मेरी ही भाँति पचास वर्षके ऊपरके हैं और वैसे ही डरे हुए हैं।

—ई० एस० पी० (एक अमेरिकन महिला)

—:●:—

गरीबोंके सहायक

कुछ वर्षों पहले बढ़वाण शहर और उसके आस-पासके भागोंमें महामारी फैल गयी थी। वालक-वृद्ध, छोटे-वड़े, गरीव-धनी—सभी इस रोगके शिकार हो गये थे। रोज दर्जनों आदमी ईश्वरके दरवार-में पहुँचते थे। गरीवोंकी स्थिति तो अत्यन्त करुणाजनक थी। जहाँ पेट भरनेका साधन न हो, वच्चे दूधके अभावसे तिलमिलाते हों, वहाँ दवाकी तो वात ही कैसे सोची जाय ?

इसी समय उसी गाँवके एक दयालु पुरुषने गरीबोंके लिए अपने भंडार खोल दिये। वह अनाज, कपड़ा, दवा रोगियोंके घर-घर पहुँचाने लगा। सूनी-अँधेरी रात हो, साँय-साँयकी आवाज करती ठंडी हवा चलती हो, कड़कड़ाता जाड़ा हो, यह दयालु पुरुष रातों घर-घर फिरता और यथासाध्य सवकी जरूरतें पूरी करता। रातको सोये लोगोंको किवाड़ खड़काकर जगाता। बाहरसे आवाज देता—"भाई ! तुम्हें किसी चीजकी जरूरत है क्या ? मैं तो तुम्हारे कुटुम्वका ही आदमी हूँ, मुझे दूसरा मत समझना। बताओ क्या करूँ ?" यों कहता हुआ उनको आवश्यक वस्तु देकर तुरन्त ही दूसरे घर की ओर जाता और ऐसे ही मीठे आत्मीयताभरे शब्दोंसे वातचीत करके आवश्यक वस्तुएँ देता। उसके मनमें उस समय गाँवभरको वचा लेनेकी ही एकमात्र कामना थी।

एक दिन एक बुढ़ियाका भरपूर जवान पुत्र महामारीका शिकार होकर चल वसा। वृद्धाका एकमात्र सहारा टूट गया। सवको

अपनी-अपनी पड़ी थी। बेचारी बुढ़ियाको आश्वासनके दो मीठे वचन कौन सुनाता। कौन उसका सहारा बनता। इस दयालु सज्जनको पता लगते ही तुरन्त यह बुढ़ियाके पास पहुँचा और उसे आश्वासन देते हुए बोला—'तुम्हारा वह पुत्र चला गया तो क्या, मैं तो अभी जीवित हूँ। आजसे तुम मुझीको अपना पुत्र मानना।' यों कहकर यह दयालु सज्जन उस बुढ़ियाको आदरपूर्वक अपने घर ले गया—एक पुत्र अपनी माताको जिस आदर और प्रेमसे ले जाता है, उसी आदर और प्रेमसे।

भगवान्‌की कृपासे महामारीका प्रकोप धीरे-धीरे कम होने लगा तथा अन्तमें शीघ्र ही सर्वथा शान्त हो गया। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उस समय वहाँ ऐसा एक भी घर नहीं बचा था, जहाँ किसी रोगीकी चारपाई न हो। परन्तु इस दयालु सज्जनके घरमें कोई भी इस रोगका शिकार नहीं हुआ। वह सज्जन स्वयं रात-दिन रोगियोंकी जमातमें ही बैठा रहता—उनकी दवा-दारू करता, उन्हें जरूरी चीजें देता, आश्वासन देता, इतनेपर भी रोगके अंशमात्रने भी इसका स्पर्श नहीं किया, मानो रोगियोंकी सेवा करनेके लिये ही ईश्वरने इसको रोगसे सर्वथा मुक्त रक्खा था।

—रमणीक गोसलिया

—:●:—

मानवता

(१)

जिसका व्यवहार सदा ही गंदा समझा जाता है, उस पुलिस-विभागमें जब कोई दयालु और सज्जन पुरुष दिखायी देते हैं, तब लोगोंको आश्चर्य होता है। एक ऐसा ही प्रसङ्ग सौराष्ट्रके केशोद ग्राममें देखा गया।

केशोदमें एक भाई तमंचा साफ करके उसे भर रहे थे। भरनेके बाद वे उचित स्थानपर उसे रख रहे थे कि तमंचा अचानक छूट गया और उससे उनकी छातीकी दाहिनी ओर गहरी चोट लगी। नवयुवक चेतनहीन होकर जमीनपर गिर पड़े।

इस दुर्घटनाका समाचार मिलते ही पुलिस-जमादार श्रीगेरैया तुरंत वहाँ पहुँचे। जाकर देखते ही उनको लगा कि यदि इस नवजवानको तुरंत ही जूनागढ़ अस्पतालमें ले जाकर इसका इलाज कराया जाय तो यह बच सकता है। परंतु उस गाँवमें उसका न तो कोई कुटुम्बी था न सगा-सम्बन्धी। जूनागढ़ ले जानेका सवारी-खर्च कौन दे, यह प्रश्न सामने आया। गाँवमें कोई भी इसके लिये तैयार नहीं हुआ। इस प्रकारके दृश्यको देखकर भी मानव-हृदय द्रवित नहीं हुए। समय बीत रहा था और नवयुवककी स्थिति बिगड़ती जा रही थी। इससे अन्तमें पुलिस-जमादार श्रीगेरैयाने जूनागढ़तकका मोटर-किराया ३०) रुपये अपने पाससे देकर उस

जवानको तुरंत जूनागढ़ पहुँचाया और यों बुझते हुए एक जीवन-दीपको इस दयालु पुलिसमैंनने बचा लिया ।

केवल ८०) वेतन पानेके कारण आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेपर भी तथा बड़े कुटुम्बके निर्वाहका भार अपने ऊपर होते हुए भी, एक मानव-प्राणके सामने इस रकमको नगण्य समझकर श्रीगेरैयाने अपनी हैसियतसे कहीं अधिक पैर बढ़ाया। धन्य !

—: ● :—

मानवता

(२)

मेरे पड़ोसीका लड़का अचानक बीमार पड़ गया। आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेके कारण इलाजकी व्यवस्था ठीक न हो सकी और इससे उसकी बीमारी बढ़ती ही गयी। पता लगानेपर मैं एक अच्छे डाक्टरको लेकर उसके घर गया। डाक्टरने देख-भालकर एक इन्जेक्शन लिख दिया और कहा कि 'यह इन्जेक्शन तुरन्त दे दिया जाय तो रोगीका बच जाना सम्भव है।' जहाँ घरमें खानेका ही टोटा हो, वहाँ इन्जेक्शनके लिये पैसे कहाँसे आयें। मैंने तुरंत डाक्टरके हाथसे कागज ले लिया और एक किरायेका रिक्सा लेकर इन्जेक्शन लानेके लिये मैं मेडिकल-स्टोर्सकी ओर चल दिया। आधे रास्ते पहुँचनेपर याद आया कि घरसे पैसे तो लाया ही नहीं, पर मनमें यह आशा हुई कि किसी अच्छे दूकानदारके पास जाकर सारी परिस्थिति समझा दूँगा तो वह इन्जेक्शन दे देगा और मैं उसे पीछे दाम दे आऊँगा। मैं एक अच्छे मेडिकल-स्टोरमें पहुँचा। वे भाई खद्दरधारी थे और समझदार भी थे, ऐसा उनकी बोलचाल-से लगा। मैंने इन्जेक्शन लेकर उनको सारी परिस्थिति समझा दी। कुछ ही देरमें दूकानदार महोदयके चेहरेका भाव बदल गया और उधार न देनेकी बात करते हुए 'terms cash' साइन बोर्डकी ओर मेरी दृष्टि खींची। मैंने अपना परिचय देकर पता बताया, पर पैसे-के पुजारी वे मेरी बात क्यों सुनने लगे। दिये हुए इन्जेक्शनको

मेरे हाथसे वापस लेते हुए उन्होंने कहा—'पैसा हो, तब ले जाइयेगा।' उन्हें यों कहते जरा भी संकोच नहीं हुआ।

मैं दूकानपर पहुँचा था, तब इन दूकानदार भाई ने कितनी सुन्दर प्रेमपूर्ण मानवताकी मुहर मुझपर लगायी थी। उसके साथ इस समयके इस कोरे व्यापारीकी तुलना नहीं हो सकती। पहली मुहर धोकेकी चीज निकली और मैं इन्जेक्शन लिये बिना ही दूकान-से बाहर निकला।

रिक्शेवालेने मेरे हाथमें इन्जेक्शन न देखकर सहज ही पूछा—'भाई! इन्जेक्शन ले आये? मैंने सब हकीकत उसे सुना दी। और मेरे आश्चर्यके बीच, किरायेपर रिक्सा चलानेवाले तथा मुश्किलसे दो रुपये रोज कमानेवाले उस रिक्शाचालक भाईने मेरे हाथमें दस रुपयेका नोट निकालकर रख दिया और कहा—'जाइये, इन्जेक्शन ले आइये।' मैं नोट लेते झिझका और मैंने बहुत-सी दलीलें कीं; पर उसने इतना ही कहा—'दुःखके समय मनुष्य मनुष्यके काम न आये तो वह मनुष्य कैसा?' मैं इन्जेक्शन ले आया और इस प्रकार एक रिक्शेवालेकी मानवताने एक मरते मनुष्यको बचा लिया।

मजदूरी करके पेट पालनेवाला रिक्शाचालक जन्मसे ही भला था, इसलिये वह आजतक वैसा ही भला बना रहा। इधर, नाटक करता हुआ वह व्यापारी समयपर मानवताकी नकाब फेंककर अपने मूलस्वरूपमें आ गया।

—महेश आचार्य

—:●:—

वह कौन था ?

घटना को लगभग पंद्रह वर्ष वीत चुके, किंतु वह आज भी स्मृतिपटपर नवीनकी भाँति अङ्कित है मेरे पूज्य पिता प्रधान अध्यापकके पदपर स्थानान्तरित होकर एक ग्राममें, जो मध्यप्रदेशके अन्तर्गत वीना ज़ँक्शनसे ग्यारह मीलकी दूरीपर स्थित है, चले गये थे। उनसे मिलने मैं जा रहा था। साथ मेरे लघु भ्राता भी थे। हम दोनों भ्राता करीब साढ़े पाँच बजे दिनमें बीना जँक्शनपर ट्रेनसे उतरे। अब वहाँसे आठ मील पैदल चलना था। अतः पूछ-ताछ कर हमलोग रेलवे लाइनके किनारे-किनारे चले। मनमें भय था कि यहाँका मार्ग देखा नहीं है, अतः सायंकालतक ग्रामतक पहुँचना सम्भव नहीं है। वरसातका मौसम था, आठ मील गेट नं० ८ तक लाइन-किनारे जाना था। पश्चात् तीन मील वहाँसे ग्रामका मार्ग तय करना था। हमलोग लगभग दो मील आगे बढ़े होंगे कि एक पथिकने कहा—'भैया! लाइन-किनारे होकर जानेमें तुम्हें बहुत चक्कर पड़ेगा; तुमलोग इस पगडंडीसे जाओगे तो जल्दी पहुँच जाओगे।' अतएव उसकी वतलायी पगडंडीसे हमलोग चलने लगे। कुछ दूर चलनेपर वह मार्ग समाप्त हो गया। अतः हमलोग पुनः वापस होकर लाइनके समीपसे राह तय करने लगे। उस समय सूर्यास्त हो चुका था। यह मुझे खूब स्मरण है—भयभीत हृदयसे ही समझिये, हम दोनों भ्राता वीना ज़ँक्शनसे पैदलका मार्ग शुरू होते ही बारी-बारीसे 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ बोलते चल रहे थे। एक अर्द्धाली मैं कहता था, दूसरी मेरा

भाई। इस प्रकार प्रभु-नाम उच्चारण करते हुए हमलोग रात्रिके लगभग आठ बजे सेमर खेड़ी गेट नं० ८ तक पहुँच गये। वहाँ कोई भी चौकीदार नहीं था, जिससे पूछकर निर्दिष्ट ग्रामतक पहुँचा जा सकता। अब यह निर्णय करना कठिन था कि ग्राम पहुँचनेके लिये किस दिशामें चला जाय। यहाँतक कि कोई प्रकाश भी किसी ओर दिखाई नहीं दिया। पश्चिमकी ओर सघन वृक्षोंको देखकर हमलोग कुछ दूर चले। मार्गकी बड़ी कठिनाई थी। जगह-जगह पानी भरा था। आगे बढ़नेको कोई मार्ग नहीं दिखायी दिया। अतः वापस गेटपर लौटनेके हेतु हम मुड़ना ही चाहते थे कि सामने अपने कंधेपर बड़ी लाठी रखे एक व्यक्ति दिखायी दिया। उसे देखते ही एक बार हमलोग तो डर गये, पर मैंने साहस करके पूछा—'भाई! तुम कहाँ जा रहे हो?' उसने स्नेहपूर्वक उत्तर दिया—'मेरी भैंस खो गयी है। उसकी खोजमें आगासौद जा रहा हूँ, तुम कहाँ जा रहे हो?' यह सुनकर मानो हमें प्राण मिल गये। सारी घबराहट दूर हो गयी। मैंने कहा—'हमें भी वहीं जाना है।' वे आगे होकर मार्ग-प्रदर्शन करते हुए बहुत आरामसे हमें ले गये। मेरे लघु भ्राताको उन्होंने कंधेपर बैठानेका बहुत आग्रह किया, किंतु मैंने अस्वीकार कर दिया। हृदय उनके प्रति कृतज्ञतासे भर रहा था। वहाँ पहुँचते ही मैं पिताजीसे मिलकर कुछ मार्गकी कठिनाइयोंका वर्णन करने लगा। फिर बाहर आकर देखता हूँ तो वहाँ कोई व्यक्ति नहीं था। न कानीहौसमें कोई भैंस ही आयी थी। आज भी सोचता रहता हूँ कि वह कौन था—मानव, भगवान् या भगवन्नाम?

—रामकृष्ण वैद्य

—:०:—

मैं तुम्हारा मित्र हूँ

लगभग तीस वर्ष पहलेकी बात है—कलकत्तेमें एक दिन मैं अपने पड़ोसी मित्र रामप्रतापके साथ गङ्गा नहाने जा रहा था। रास्तेमें भीड़ थी; हम लोगोंके स्वभावमें कुछ उद्दण्डता तथा अल्हड़-पन था। जवान उम्र, घरमें पैसे, किसीका नियन्त्रण नहीं। हम दोनों गङ्गा-स्नानके पुण्यके लिये नहीं, मौजके लिये नहाने जाया करते थे। रास्तेमें मनमाना बोलते-हँसते, राह चलतोंकी दिल्लगियाँ उड़ाते चलते थे। रास्तेमें कीचड़ था। एक सज्जन कुछ अधेड़ उम्र-के, चश्मा लगाये हमारे आगे-आगे जा रहे थे। शायद कुछ श्लोक पाठ कर रहे थे। मैंने उनको तंग करनेके लिये छड़खानी की। उन्होंने मुड़कर हमलोगोंकी ओर देखा और मुस्कराकर शान्तिसे चलने लगे। हमलोग तो उनकी शान्ति भङ्ग करना चाहते थे, अत-एव बेमतलब अनाप-शनाप बकने लगे। इसपर भी उनकी शान्ति भङ्ग नहीं हुई। वे बीच-बीचमें हमारी ओर देखकर मुस्करा देते। पर हम-लोगोंकी उद्दण्डता उनकी हँसीको कैसे सह सकती थी। मैंने बगलसे निकलकर कोहनीसे बड़े जोरसे धक्का दिया, वे कीचड़में गिर पड़े और मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा। इतनेमें देखा—मेरा साथी रामप्रताप भी फिसलकर गिर पड़ा है। शायद उन सज्जनके गिरनेकी खुशीमें वह अपनेको सँभाल न सका हो और उसका पैर फिसल गया हो। लोग इकट्ठा हो गये। कीचड़में लथपथ वे सज्जन उठकर खड़े हो

गये। उनका चश्मा टूट गया था। धोती, चद्दर, नहाकर पहननेको लाये हुए कपड़े, सारा शरीर कीचड़से लथपथ हो गया था। चश्मेके काँचकी नाकपर एक खरौंच लगी थी। शायद और अङ्गोंमें भी चोट लगी हो। उन्होंने उठते ही मेरी ओर देखा, कि पास ही गिरे हुए साथी रामप्रतापको सँभालकर उठाने लगे। रामप्रतापके दाहिने हाथमें काफी चोट आयी थी। वह बहुत बेचैन था। उन्होंने तथा मैंने बड़ी कठिनतासे उसे उठाया। वह वेदनाके मारे अत्यन्त व्याकुल था।

कुछ दूर खड़े कांस्टेबलको उन्होंने पुकारा। पुकारते ही वह आया और उन सज्जनकी ओर देखकर तथा मानो उन्हें पहचानकर उसने बड़े अदबसे सलाम किया और आज्ञा माँगी—'क्या करूँ?' उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा—'एक घोड़ागाड़ी लाओ, इन्हें अस्पताल ले जाना है।' काँस्टेबलने बड़े सम्मानसे कहा—'हुजूरके कपड़े भी कीचड़से भर गये हैं। हुजूर गङ्गास्नानको पधारें। मैं अभी थानेसे दरोगाजीको कहकर और सिपाही ले आता हूँ। हुजूर हुक्म दें तो दरोगाजीको ही ले आऊँगा और इनको अस्पताल ले जाऊँगा। इलाजकी सब व्यवस्था हो जायगी।' मैं समझ गया कि ये सज्जन पुलिसके कोई बड़े अधिकारी हैं। मैं रो पड़ा और थर-थर काँपने लगा। मैंने उनके पैर पकड़ लिये। उन्होंने हँसते हुए कहा—'भैया! तरुणावस्थामें अल्हड़पन हुआ ही करता है। आप डरिये नहीं। हाँ, भविष्यमें इतना ध्यान रखिये कि जिसमें अपना तथा किसी भी दूसरेका किसी प्रकार भी नुकसान या अहित होता हो वैसी अल्हड़ता मत किया कीजिये।' मुझसे इतना कहकर उन्होंने कांस्टेबलसे कहा—तुम ड्यूटीपर हो, इसलिये थाना जानेकी जरूरत

नहीं है। सिर्फ एक घोड़ागाड़ी ले आओ। इनको मैं ही अस्पताल ले जाऊँगा। सहायताके लिये इनके साथी ये सज्जन मेरे साथ जायँगे ही।'

मेरी विचित्र दशा थी। शरीरमें पसीना आ रहा था। डर तो था ही। साथ ही इन देवता पुलिस-अफसरके बर्तावसे मैं आश्चर्य-चकित था और मैं यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था कि मेरा स्वभाव या जीवन ही बड़ी तेजीसे बदल रहा है। मुझे अपनी करनीपर पश्चात्ताप था। भविष्यमें वैसा कोई भी कर्म न करनेकी मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की। मेरा मन उन देव-मानवके चरणोंके प्रति भक्तिश्रद्धासे अवनत हो रहा था।

गाड़ी आयी। मैंने तथा उन्होंने रामप्रतापको सहारा देकर गाड़ीपर चढ़ाया। वे उसी कीचड़-सने शरीरसे अस्पताल पहुँचे। उन्हें कोई लाज-शरम नहीं आयी। उन्होंने वहाँ अपना परिचय दिया, तब पता लगा कि वे पुलिस-कप्तान (सुपरिटेंडेंट) हैं और बड़े सम्भ्रान्त कुलके सज्जन हैं।

डाक्टरोंने बड़े सम्मानके साथ उन्हें बैठाया। हाथ-पैर धुलवाये। उन्होंने कहा—हम दोनों ही कीचड़में रपट कर गिर गये।' राम-प्रतापकी समुचित चिकित्सा हुई। हड्डी नहीं टूटी थी। दवा लगा-कर पट्टी बाँध दी गयी। एक दूसरी घोड़ागाड़ी मँगवाकर उन्होंने हम दोनोंको बिदा करते हुए कहा—'भाई! डरना नहीं। मुझे तो बड़ा दुःख इस बातका है कि आप लोगोंका मजा इन्हें चोट लगनेसे किरकिरा हो गया। मैं ही गिरा होता तो मेरा कुछ बिगड़ा नहीं था और आपका मनोरंजन हो जाता। मैं तो गङ्गास्नान करने जा

ही रहा था । कीचड़ वहाँ धुल जाता । पर भाई ! जैसा मैंने इन्हें कहा है, ऐसे मनोरंजनकी चेष्टा मत किया करो, जिससे आपकी तथा दूसरेकी हानि हो या अहित हो । मुझे अपना मित्र मानना सचमुच तुम मेरे मित्र हो और मैं तुम्हारा मित्र हूँ । कभी कोई मेरे योग्य कार्य हो तो निःसंकोच मिलना । मेरा × × × × नाम है।

हम तो सुनकर चकित हो गये । मैंने भक्तिविनम्र स्वरसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया । सचमुच वे हमारे यथार्थ मित्र ही थे और मित्र ही बने रहे। उनसे शुभकी ओर जीवन-परिवर्तनमें समय-समय पर बड़ी सहायता मिली । मित्रका धर्म ही है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा ।

हमलोगोंका जीवन—जो हजारों उपदेश-वाक्योंसे अबतक नहीं बदला था और आगे भी नहीं बदल सकता था; क्योंकि हमें अपनी उद्दण्डताके सामने न किसीका उपदेश सुननेकी फुरसत थी न श्रद्धा ही थी—आज इन देवपुरुषके आचरणसे अकस्मात् बदल गया और तबसे हम भी बदल गये ।

—गजानन शर्मा

—: ● :—

विलक्षण सद्व्यवहार

जगन्नाथजी और महानन्दजी सगे भाई थे। बड़ा प्रेम था। घरका बँटवारा हो चुका था; परन्तु परस्पर कोई भी स्वार्थजनित भेद नहीं था। बड़े भाई जगन्नाथजीकी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र सम्पतरामने अपने चाचा महानन्दका एक बार कहना नहीं माना, बड़ी बुरी तरह पेश आया और उनकी इच्छाके विपरीत कोई ऐसा काम अपने मनसे कर लिया, जिससे उनके कुलकी प्रतिष्ठामें बड़ा धब्बा लगता था। इस बातको लेकर बड़ा मनमुटाव हो गया और वह यहाँतक बढ़ा कि दोनों परिवारोंमें परस्पर बोलचाल बंद हो गयी। बोलना बंद भी पहले सम्पतरामने ही किया।

एक बार किसी झूठे मुकदमेमें सम्पतराम फँस गया और पकड़ लिया गया। भाग्यवश सम्पतरामकी आर्थिक स्थिति उस समय बहुत कमजोर हो गयी थी। मामला था तो झूठा, पर बड़ा संगीन था। जमानतकी बड़ी चिन्ता हुई। चाचा महानन्द सब प्रकार समर्थ थे, पर उनसे वह सहायताके लिये कैसे कहता। उसके मनका भाव यही था कि कहनेपर भी महानन्दजी सहायता नहीं करेंगे; क्योंकि वह उनका बड़ा अपमान कर चुका था। फिर महानन्दजी वहाँ थे भी नहीं। सम्पतरामने अपनेको सर्वथा असहाय अनुभव किया।

महानन्दजीको उनके लड़के लक्ष्मीनारायणने तारद्वारा समाचार भेजा। लक्ष्मीनारायणके मनमें सहानुभूति नहीं थी। उसने केवल

सूचना दी थी। सूचना देनेमें भी उसका क्या अभिप्राय था, पता नहीं। पर सूचना मिलनेकी देर थी, महानन्दजी पहली ट्रेनसे आ और सीधे कोर्टमें जाकर उसकी जमानत ली और छुड़ाकर अपनी ही गाड़ीमें सम्पतरामको घर ले आये। सम्पतरामकी विचित्र दशा थी। वह अपनी करनीपर पश्चाताप करता हुआ रो रहा था। महानन्दजी पहले बोले। कहा—'बेटा! घबराओ नहीं। तुम नहीं बोलते थे—मैं भी नहीं बोलता था। पर इससे तुम पराये थोड़े ही हो गये थे।' बड़े प्यारसे महानन्दजीने सम्पतरामके सिरपर हाथ फेरा। उसे नहला-धुलाकर चाचा-चाचीने अपने पास बैठाकर स्नेहसे भोजन कराया। उसकी पत्नी तथा बच्चोंको भी बुला लिया गया।

अच्छे वकीलोंकी नियुक्ति की गयी। मामला संगीन होनेपर भी झूठा था। इससे सम्पतराम बेदाग छूट गया। चाचा-चाचीको बड़ी खुशी हुई।

इसके बाद महानन्दजीने सम्पतरामको फिरसे पैतृक सम्पत्तिमें और कारोबारमें हिस्सेदार बना लिया। दरिद्रावस्थाको प्राप्त सम्पतराम पुनः लखपती हो गया। अब तो सम्पतराम अपने चाचा श्रीमहानन्दजीको ईश्वरके तुल्य मानकर उनकी रुचिका अनुसरण करने लगा।

इस व्यवस्थासे सम्पतरामको सुखी देखकर चाचीको सबसे अधिक प्रसन्नता हुई; क्योंकि सम्पतरामकी माताका बहुत छोटी अवस्थामें देहान्त हो गया था। सम्पतरामको चाचीने ही बड़े लाड़-चावसे पाला था। सम्पतराम भी उसे माँ ही मानता और कहता

था। संगदोषसे बीचमें बुद्धि विगड़ी थी। अब इस विपत्ति तथा विपत्तिके समय किये हुए चाचा-चाचीके अतुलनीय सद्व्यवहारने उसकी बुद्धिको पुनः सात्त्विक बना दिया। सारी दोषाग्नि चाचीकी स्नेह-सुधावर्षासे सदाके लिये शान्त हो गयी।

लक्ष्मीनारायणको पहले कुछ यह व्यवस्था प्रतिकूल-सी लगी; परंतु पीछे वह भी समझ गया और सारा परिबार दिव्य आनन्द-समुद्रमें लहराने लगा।

—राम कुमार गुप्त

—:●:—

क्रोधपर विजय

यद्यपि मैंने सत्यके सम्बन्धमें अध्ययन किया है और उसके स्वरूपको समझती भी हूँ, फिर भी अपने सप्तवर्षीय पुत्रके प्रति मेरे स्वभावमें बड़ा क्रोध भर गया था। जबसे उससे घुटनोंके बल चलना आरम्भ किया, तभीसे वह कुछ ऐसी चेष्टाएँ करने लगा, जिससे मुझे क्रोध आ जाता। शुभकी शक्तिमें मेरा विश्वास होनेपर भी उसके प्रतिकूल तथा शान्तिके लिये प्रार्थना करते रहनेपर भी, मैं उसपर बरस पड़ती (कभी-कभी तो पीटने भी लग जाती)। मैं प्रायः आपेसे बाहर हो जाती।

मैं जानती हूँ कि मेरे क्रोधी स्वभावने ही मुझे एक असाध्य चर्मरोग प्रदान कर दिया, जिसे मैं पाँच वर्षोंसे भोगती आ रही हूँ। मेरे छोटे बच्चेको भी नासूर हो गया, जिससे वह बीच-बीचमें बहुत कम सुनने लगा। यह जानते हुए भी कि हमारे विचारोंका हमारे शरीरपर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, मैं अपने क्रोधपर विजय नहीं पा सकी। वास्तवमें क्रोधका कारण मेरे पुत्रकी चेष्टाएँ उतना नहीं थीं, जितना उन चेष्टाओंसे भभक उठनेकी मेरी प्रकृति।

गत वर्ष लेन्ट नामक व्रतके आनेके पहले मैंने क्रोधपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय किया। मेरे कई मित्रोंने उस पर्वपर अमुक-अमुक वस्तुओंका परित्याग करनेकी बात कही, तो मैंने क्रोधके परित्यागका संकल्प किया।

लेन्टके प्रथम दिन ही मैंने अपने बच्चोंसे कहा कि 'मैंने अब भगवान्‌को क्रोध न करनेका वचन दे दिया है और अपने वचनपर दृढ़ रहनेके लिये मुझे समस्त परिवारकी सहायता आवश्यक है।' बच्चे बड़े प्रभावित हुए और एक सप्ताहतक—पूरे एक सप्ताहतक घरमें सुख-शान्तिका राज्य रहा।

फिर पहली स्थिति आने लगी। बच्चोंने फिर अपनी छेड़खानी शुरू की; साथ ही जो काम उन्हें करने चाहिये थे, उन्हें करना छोड़ दिया। इधर मुझे भी अपना पारा चढ़ता हुआ लगा। मैं प्रायः उच्च स्वरमें पुकार उठती, 'भगवन्! कृपा करके मेरी सहायता करो, जिससे मुझे क्रोध न आये।' तथा जब स्थिति सरल बन जाती और फिर सुव्यवस्था छा जाती, तब मैं पुनः निश्चय करती—'मैं क्रोध नहीं करूँगी' और फिर कहती, 'प्रभु! तुझे धन्यवाद है।'

बच्चोंने भी मेरे संकल्पका समर्थन करना आरम्भ किया। 'मैं सुनती कि वे अपने सोनेके कमरेमें कह रहे हैं, 'आओ, और कुछ करनेके पहले हम अपने बिस्तरे ठीक कर लें, जिससे भगवान्‌के सामने दिये हुए अपने वचनको माँ निभा सके।'

अब हमारे घरमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि क्रोधको दबाये रखनेके अपने निश्चयपर जब मैं अडिग न रह सकती, तब मैं सचमुच अपने बच्चोंके सामने घुटने टेककर भगवान्‌से अपनेको तथा जिस बच्चेके कारण क्रोध आया होता, उसको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करती। फिर मैं बच्चोंके साथ बैठकर बात करती, मैं उनसे कहती—'तुम लोग मुझे वैसे ही क्षमा करो, जैसे कि मैंने तुम लोगोंको क्षमा कर दिया है।'

और फिर उनको बताती कि 'हमारे परस्परके क्षमादानके कारण भगवान्‌ने भी हमको क्षमा कर दिया है !' इसके परिणाममें हमको स्वर्गीय सुख मिला है ।

और हाँ, चर्मरोगमें भी सुधार दिखायी दे रहा है । हमें कुछ ऐसी क्रियाएँ बतायी गयी थीं, जिनके फलस्वरूप मेरे बच्चेका नासूर भी अच्छा हो रहा है और उसकी श्रवणशक्ति अब प्रायः ठीक है । इसमें संदेह नहीं कि इस सुधारके यथार्थ कारणको हम जानते हैं और हमारा हृदय कृतज्ञतासे परिप्लुत है ।*

—एम० एस० (एक अमेरिकन महिला)

—:●:—

---

* मानसिक भावों, विचारों तथा क्रियाओंका शरीरपर न्यूनाधिक रूपसे बड़ा प्रभाव पड़ता है । 'काम' के विचारोंसे पागलपन, नपुंसकता, मधुमेह और प्रमेहके रोग उत्पन्न होते हैं । बिषाद, भय और निराशाके विचारोंसे शरीरमें अशक्ति, कम्पन, अनिद्रा, सिरदर्द आदि, क्रोधके विचारोंसे पामा (एकजिमा), कुष्ट, हृद्रोग आदि, लोभके विचारोंसे अपचन, उदरव्याधि, यकृत, शूल आदि । इसी प्रकार अन्यान्य कुविचारोंसे विभिन्न रोग उत्पन्न होते तथा बढ़ते हैं । इसी तरह शम, दम, तितिक्षा, क्षमा, त्याग, भगवद्विश्वास, आत्माकी नित्य पूर्णता, निरामयता और अमरताके विचारोंसे रोग-नाशके साथ ही विलक्षण स्वस्थता प्राप्त होती है ।

—सम्पादक

भगवान्‌की सर्वसमर्थ कृपाशक्ति

गत सप्ताह अचानक एक खर्चा आ गया, इससे कुछ बँधे आवश्यक खर्चेके लिये रुपयोंकी कमी पड़ गयी। जब मैंने अपने बैंककी किताब सँभाली तो पता लगा कि जितने रुपयेकी आवश्यकता थी, बैंकमें उससे कम ही हैं। मैं व्यग्र हो उठा, किन्तु फिर मेरा मन भगवान्‌की सर्वसमर्थ एवं सर्वव्यापिनी कृपाशक्तिकी स्मृतिसे भर गया। मुझे विश्वासपूर्वक निश्चय हो गया कि भगवान्‌को मेरी आवश्यकताका पता है और वे उसे पूरी करेंगे।

लगभग दो घंटे बाद एक युवक, जिसने कुछ मास पूर्व मेरे लिये कुछ काम किया था, मेरे घर आया। मैं तो एकदम आश्चर्य-चकित रह गया। गत वर्ष बड़े दिनोंके समय पहले वह मुझसे विदा हुआ था। तबसे उसका कोई समाचार नहीं मिला था। इसलिये मैं सोचता था कि वह किसी दूसरे प्रान्तमें रहता होगा। उसने नमस्कार करते हुए पचास डालर मेरे हाथपर रख दिये। महीनों पहले जब वह मुझसे विदा हुआ था, उससे पहले ही उसने मुझसे रुपये उधार लिये थे। मैं यह तो जानता था कि उसके पास पैसे आते ही वह मुझे लौटा देगा, किंतु यह नहीं जानता था कि यह कार्य ठीक उसी समय होगा, जब कि उसके द्वारा मेरी आवश्यकता-की पूरी-पूरी पूर्ति होगी।

—आर० जी० आर० (एक अमेरिकन सज्जन)

—:●:—

सच्ची मानवता

घटना सात वर्ष पहलेकी है। उस समय मैं अपने कामके लिये बीच-बीचमें फर्रुखाबाद जाया करता था। सूती तथा रेशमी कपड़े-की छपाईके लिये यह नगर प्रसिद्ध है। यह काम प्रधानतया एक ही कौमके हाथमें है। उन्हें 'साध' कहते हैं। साध लोग डेढ़-दो सौ वर्ष पहले राजस्थानसे आकर यहाँ बसे थे। इस समय वे अधिकांश फर्रुखाबाद और मिर्जापुरमें रहते हैं। उनका जीवन सादा और शान्त होता है। वे प्रायः उच्च विचारके तथा अपने विचारोंको जीवनमें उतारनेवाले होते हैं।

एक दिन अचानक एक धनी साधका लड़का बस-दुर्घटनामें आकर मर गया। बसके मुसाफिरोंने आवेशमें आकर ड्राइवरको इतना मारा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा। इसी बीच खबर मिलते ही लड़केका वह धनी पिता तुरन्त वहाँ आया और देखा कि लड़का मर गया है और ड्राइवर बेहोश पड़ा है। वह तुरन्त किसीकी मोटर माँगकर ड्राइवरको अस्पताल ले गया और उसके इलाजकी व्यवस्था कराकर मरे हुए अपने लड़केके पास आया और तब उसने उसका अन्तिम संस्कार किया।

दो-चार दिनों बाद किसीने पूछा—'तुमने यह क्या काम किया ? लड़केको मरा छोड़कर ड्राइवरको अस्पताल ले गये ?' तब उसने कहा—'मैंने बहुत ही ठीक किया। ड्राइवर गरीब आदमी है। मेरा लड़का वापस आ जाय, ऐसी आशा तो थी ही नहीं। ड्राइवरका जीवन बच सकता था। एक मर गया, एक बच गया। मेरे इस कार्यसे ईश्वर प्रसन्न होंगे और मेरे पुत्रकी आत्माको शान्ति मिलेगी।' कलियुगमें भी सच्ची मानवता अभी मर नहीं गयी है।

—जेठालाल कानजी शाह

—:●:—

मानवताका झरना

यहाँ रातको आनेवाली अन्तिम गाड़ीका समय बहुत ही अड़चन-भरा है। साढ़े बारहका समय है और कहीं लेट हो गयी तो दो-ढाई बज जाते हैं। कुछ दिनों पहले हमारे एक मेहमान आनेवाले थे, इसलिये उन्हें लेने मैं स्टेशन गया था। पौषका महीना—इसपर ठंढी हवा— जाड़ेके मारे शरीरके रोंगटे खड़े हो रहे थे। भाग्यसे गाड़ी उस दिन लेट आयी। इससे तथा बहुत सर्दीके कारण बहुत-से ताँगेवाले लौट गये थे। सिर्फ छः-सात ताँगे थे। मुसाफिर ज्यादा और ताँगे कम—इससे उनके भाव बढ़ गये। डेढ़के बदले पाँच रुपये हो गये। ताँगेवालोंको कुछ कम लेनेके लिये कहा, पर वे अपनी बातपर अडिग थे। मैं एक ताँगेवालेसे झकझक कर ही रहा था कि एक दूसरे ताँगेवालेने कहा—'चलिये बाबू! मेरे ताँगेपर आइये, यह खाली है।' मैंने मन-ही-मन कहा—'तुम्हारा ताँगा तो खाली है, पर इधर मेरी जेब जो खाली है।'

मैंने पूछा—'क्या लोगे ?'

'दो रुपये बाबू' ताँगेवालेने कहा।

'हैं! क्या दिल्लगी कर रहे हो ?'

'बाबू! आपसे मैं दिल्लगी करता ?

इस ताँगेवालेने जब दो रुपये कहे, तब एक दूसरा ताँगेवाला इससे चिढ़कर कहने लगा—'यह महमदा ही भाव बिगाड़कर मुसाफिरोंको ले जाता है। किसी दिन इसको मजा चखाना पड़ेगा।'

हमलोग महमदेके ताँगेपर सवार हो गये। ताँगा चलनेपर मैंने पूछा—'महमद ! तुमने दो रुपये कैसे कहे ?'

'बाबू ! जरा खुदाका भी तो डर रखना चाहिये ? आपको परेशानीमें पड़े देखकर—आपकी परेशानीसे फायदा उठाकर आपसे दोके बदले पाँच रुपये लेना खुदाकी नजरमें बेईमानी होगी। खुदा-की मेहरबानीसे जब जरूरतके माफिक मिल जाता है, तब बेईमानी करके ज्यादा पैसे क्या करना है।'

एक मामूली आदमीके हृदयमें इस प्रकार मानवताका झरना बहता देखकर मेरा मन उसके सामने झुक गया। मैंने उसको बहुत दबाकर तीन रुपये दिये—वह एक पैसा भी अधिक नहीं लेना चाहता था।

—मधुकान्त भट्ट

—:●:—

ईमानदारीका उत्तराधिकार

मोहनलाल और भानीराम दोनों हिस्सेदार थे। व्यापार करते थे। मोहनलालकी रकम लगती थी, भानीराम काम करता था। परस्पर बड़ा विश्वास था। खूब प्रेम था। व्यापारमें इतनी कमाई होती थी कि मोहनलालको अपनी रकमका पर्याप्त ब्याज मिलकर भी कुछ बच जाता था। भानीरामके चार-पाँच बच्चे थे। बड़ा परिवार था, इससे कुछ बचता तो नहीं था, पर खर्चका निर्वाह अच्छी तरह होता था। कुछ वर्षों बाद मोहनलालकी इच्छा कारबार न करके अलग रहनेकी हुई। स्त्री-पुरुष दो ही थे। अवस्था बड़ी हो गयी थी। 'व्यापारमें कहीं घाटा लग जाय तो फिर कठिनाई होगी' इस विचारसे मोहनलालने भानीरामसे कह दिया कि 'मेरी रकम मुझे दे दो, तुम अपना व्यापार अकेले करो।' व्यापार चल निकला था। अच्छी साख हो गयी थी, इससे कोई खास अड़चन नहीं थी। रकम दूसरे लोगोंसे उधार मिल सकती थी। भानीरामकी इच्छा नहीं थी। वह इस समय अलग होना नहीं चाहता था, जिसे वह बताना भी नहीं चाहता था। परंतु मोहनलालके विशेष जोर देनेपर भानीरामने बात मान ली। मोहनलालका हिस्सा निकाल दिया गया। उनकी असली रकम ब्याज तथा नफेसमेत कुछ दिनोंमें दे दी गयी, फाड़खती लिख दी गयी। मोहनलाल पत्नीसहित अलग रहने लगे।

भानीरामका व्यापार चलने लगा। पर भानीराम उदास रहता।

पाँच-छः वर्षों बाद भानीरामको संग्रहणीकी बीमारी हो गयी। दवा की गयी, पर रोग बढ़ता ही गया। स्थिति बिगड़ गयी। तब एक दिन उसने अपने बड़े पुत्र भगवानदासको एकान्तमें बुलाकर कहा—'बेटा ! मेरा शरीर अब नहीं रहेगा। पर मेरे मनमें एक चीजका बड़ा दुःख है। भाई मोहनलालकी हिस्सेदारीमें मैं काम करता था, उन्हींकी रकम लगती थी, इसे तुम जानते ही हो। उनका मुझपर बड़ा विश्वास था। उन्होंने कभी भी लेखा-जोखा नहीं देखा। मैंने जो कुछ बताया सो मान लिया। मैंने भी कभी विश्वासघात नहीं किया, न करना ही चाहता था। एक दिन तुम्हारे फूफा रामकुमारजी आये। उनको व्यापारमें घाटा लगा था और उनका फर्म फेल होने जा रहा था। उन्होंने दस हजार रुपये माँगे। मैंने सब स्थिति समझ ली। न देनेपर उनका फर्म अवश्य फेल हो जाता और वे सदाके लिये बर्बाद हो जाते। उन्होंने पहले कभी मोहनलालजीसे अनुचित व्यवहार किया था तथा उनसे लड़ लिये थे। अतएव उनसे छिपाकर रुपये लेना चाहते थे। उन्हें मालूम होनेपर वे देते भी नहीं। मेरे पास अलग रुपये थे नहीं। मैंने रामकुमारजीकी बड़ी दयनीय दशा देखकर और शीघ्र ही वापस लौटा देनेका वचन देनेपर उन्हें रुपये दे दिये। मैंने सोचा था, रामकुमारजी लौटा देंगे। पर वे लौटा नहीं सके। मैंने संकोचवश मोहनलालजीसे कभी कुछ कहा नहीं। मेरे पास इतने रुपये अबतक हुए नहीं, नहीं तो मैं जमा करवा देता। मोहनलालजीके अलग होनेके समय भी मैंने उनसे कुछ कहा नहीं; पर रुपये तो उनके मुझको देने ही हैं। अपना कारबार अब ठीक चल रहा है। मेरा अनुमान है अगले छः महीनेतक तुम्हारे पास उन्हें लौटाने के लिये इतने रुपये नफेके हो

जायेंगे। अतएव मेरा अनुरोध है कि ज्यों ही तुम्हारे पास रुपये हों, व्याजसमेत तुरंत जाकर लौटा देना। इससे मेरी आत्माको बड़ी शान्ति मिलेगी। मैं तुम्हें उत्तराधिकारमें यह कर्तव्य भी दे जाता हूँ। भाग्यकी बात है, अभी उस दिन मोहनलालजीके घर चोरी हो गयी तथा जिनको उन्होंने कुछ रुपये दे रक्खे थे, उनका भी काम विगड़ गया। अतएव उनका हाथ वहुत तंग हो गया है। वे बड़े अभावमें हैं। तुम उन्हें रुपये दोगे तो उनको बड़ी प्रसन्नता होगी और मेरी आत्माको वहुत सुख पहुँचेगा। सुपुत्र भगवानदासने पिताकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार किया। भानीरामजीका देहान्त हो गया!

× × × ×

एक दिन मोहनलालजी अपनी पत्नीके पास बैठे थे कि भानी-रामके लड़के भगवानदासने उनके पास पहुँचकर दोनोंके चरणोंमें प्रणाम किया। दोनोंने शुभाशीर्वाद देकर कहा—'बेटा! तुमलोग प्रसन्न रहो। मेरे तो दिन ही बदल गये हैं। आजकल खर्च चलना मुश्किल हो रहा है। भाई भानीरामसे अलग न होता तो यह दशा क्यों होती। खैर!' भगवानदासने तेरह हजार चार सौ रुपयेके नोटोंकी गड्डी उनके चरणोंमें रखकर मरते समय पिताकी कही हुई सारी बातें एक-एक अक्षर उनसे कह दीं। मोहनलाल सव सुनकर चकित हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसू वह चले। उन्होंने बड़ी मुश्किलसे रुपये लेने स्वीकार किये। दोनों (पति-पत्नी) ने भगवानदास तथा भानीरामके सारे परिवारको सैकड़ों आशीर्वाद गद्गद वाणीसे दिया।

कहा—'बेटा ! इस समय हमारी इस दुखी हालतमें तुमने ये रुपये देकर बड़ा ही उपकार किया है। तुम्हारे स्वर्गीय पिता धन्य हैं। मुझे तो इन रुपयोंकी कोई कल्पना ही नहीं थी। उन्होंने घरमें रुपये बरते भी नहीं थे। फिर भी मृत्युके समय उनको इतना ख्याल रहा। वे तुमसे कह गये और तुम धन्य हो, सच्चे उत्तराधिकारी सपूत हो, जो रुपयोंका जरा भी लोभ न करके ब्याजसमेत मुझे रुपये देने आये हो। भगवान् तुम्हारा भला करें। हमारा रोम-रोम तुम्हें आशीर्वाद देता है। पर बेटा ! मैं ब्याजके रुपये नहीं लूँगा, तुम वापस ले जाओ !

भगवानदास ने कहा—"चाचाजी ! मैं तो पिताजीके आज्ञानुसार ही कर रहा हूँ। आपके आशीर्वादसे मैं बहुत कमा लूँगा। ये रुपये तो आपको रखने ही पड़ेंगे। पिताजीने आपके प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते हुए मुझसे कहा था कि 'भाई मोहनलालजीके मुझपर बड़े उपकार हैं।' सो चाचाजी ! हम उनके लड़के हैं। अतः उनकी जगह अब आप ही हमारे माता-पिता हैं। जबतक आपलोग जीयें, हमारी सेवा स्वीकार करते रहें। आपके भोजनादिकी सारी व्यवस्था हम आपके पुत्र करेंगे और आपको कृपा करके हमारी प्रार्थना माननी पड़ेगी।"

जैसे पिता, वैसे पुत्र ! मोहनलाल और उनकी पत्नी दोनोंने आँसुओंकी धारा बहाते हुए सब स्वीकार कर लिया।

—तोलाराम गुप्त

—:●:—

सच्ची मानवता और पड़ोसी-धर्म

देशमें दुर्दिन थे। हिंदू-मुसलमानोंमें जहाँ-तहाँ मार-काट मची थी। पड़ोसके एक गाँवमें, जहाँ हिंदुओंकी संख्या कम थी, मुसलमानों-ने बड़े अत्याचार किये। घरोंमें आग लगा दी, सम्पत्ति लूट ली, बच्चों तथा बूढ़ोंतकको बेरहमीसे कत्ल कर दिया। बहिन-बेटियोंका धर्म भ्रष्ट करके उन्हें उड़ा ले गये। कोई भी जुल्म बचा नहीं। आस-पासके गाँवोंमें हिंदुओंमें बदलेकी दुर्भावना जागी। एक गाँवमें, जहाँ मुसलमानोंकी संख्या कम थी, हिंदू युवकोंने बदला लेना चाहा। उनका खून खौल रहा था। उन्होंने वैसे अत्याचार तो नहीं किये। स्वभाव न होनेसे कर ही नहीं पाये। पर मुसलमानोंको, उनका सब कुछ छीन-छानकर भगा दिया। दो-तीन गुंडोंको मार भी दिया। आतंक छा गया। लाला लखपतरायके बगलमें ही एक मुसलमान बोहरेका घर था। घरके सब लोग भाग गये। घर लूट लिया गया। एक तरुणी लड़की बुखारके कारण न भाग सकी, उसको उसकी तकदीरपर घरवाले छोड़ गये। वह घरके पीछे खड़ी काँप रही थी। कुछ हिंदू गुंडे उसे पकड़ना चाहते थे। उसने पीछेसे लाला लखपत-रायकी पत्नीको पुकारकर कहा—'चाची! मुझे बचाओ।' लाला लखपतरायकी पत्नीने करुण आवाज सुनी। उसने दौड़कर लखपत-रायजीसे कहा, जो बाहर उपद्रव शान्त करनेमें लगे थे। वे दौड़े आये और लड़कीसे बोले—'बेटी! डर मत, तेरी चाचीके पास चली आ। तेज मिजाजके जोशभरे कुछ हिंदू युवक यह नहीं चाहते

थे, उन्होंने रोकना चाहा; पर लाला लखपतरायजीने उनसे कहा-'देखो भैया! यह मेरी धरमकी बेटी है, अतः तुमलोगोंकी वहिन है, अब इसकी ओर बुरी नजरसे ताकना वहिनकी ओर ताकना है। तुम मेरी बात मानकर चले जाओ।' यद्यपि वे तरुण यह चाहते नहीं थे, पर लाला लखपतरायजीको सब मानते थे। गाँवमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो लालाजीके सद्व्यवहारोंके सामने सिर न झुकाता हो और उनके उपकारोंका ऋणी न हो। वे सब चले गये। लड़की तो पहले ही चाचीके साथमें घर आ गयी थी। कहना नहीं होगा कि उन्होंने बेटीके समान ही सहज-स्नेहसे उसे घरमें रक्खा और उपद्रव शान्त होनेपर पता लगाकर उसके रिश्तेदारोंके पास सुरक्षित पहुँचाकर सच्ची मानवता और पड़ोसी-धर्मका आदर्श परिचय दिया।

—लेखराज मेहरा

—:●:—

दिल्लीका ईमानदार मजदूर

उस दिन दिल्ली स्टेशनपर हमलोग उतरे। सामान बहुत था, इसलिये एक रिटायरिंग रूम किरायेपर लेकर उसमें रखवा दिया। हमलोग सब आवश्यक सामान साथ लेकर मोटरोंपर सवार हो गये। पण्डित श्रीगोवर्धनजी भी सपरिवार उसी ट्रेनसे साथ आये थे। उन्होंने भी कुछ सामान रिटायरिंग रूममें रखवा दिया। एक पेटी—जिसमें उनके ठाकुरजी तथा कुछ जोखिमकी चीजें भी थीं और बिस्तर कुलीके सिरपर रखकर वे बाहर आ गये। मोटरें जानेवाली थीं। वे सामानकी बात भूल गये, कुली शायद आगे-पीछे रह गया था और पत्नीसहित मोटरपर सवार हो गये। नयी दिल्लीमें पहुँचकर जब सामान देखा तो नहीं मिला। मिलता कैसे, वह तो रखवाया ही नहीं था। बड़ी निराशा तथा चिन्ता हुई। सामान मिलनेकी आशा बहुत कम थी। वे वापस स्टेशन जाकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। इतनेमें किसीने पुकारा—बाबूजी ! इधर आइये, यह अपना सामान सँभालिये। इन्होंने जाकर देखा, कुली बेचारा सामान रक्खे खड़ा है। उसने कहा, मैंने आपको ढूँढ़ा, आप मिले नहीं, तबसे मैं बाट देख रहा हूँ।' सारी चीजें पण्डितजीको सुरक्षित मिल गयीं। बड़ी प्रसन्नता हुई। कुलीको एक रुपया उन्होंने इनाम दिया। दिल्लीके कुली—जहाँ बहुत बदनाम हैं, वहाँ इस गरीब कुलीकी यह अद्भुत ईमानदारी वहाँके कुलियोंके प्रति सद्भाव तथा श्रद्धा पैदा करती है।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल

—: ● :—

सद्‌गुरुकी महिमा

छः साल पहलेकी बात है, जिस समय हम कलकत्तेके 'तिल-जाला' विभागमें रहते थे। जिस मकानमें हम रहते थे, वहाँ बिजली नहीं थी और आस-पासका प्रदेश बिल्कुल देहाती मालूम पड़ता था। इसलिये कोई अच्छा-सा मकान ढूंढ़नेका विचार चल रहा था।

हर शनिवारके दिन मेरे पति आफिससे दो बजेतक घर लौट आया करते थे। परंतु उस शनिवारको आफिस जाते समय बोले—'मैं आज आफिससे सीधा एक मकान देखने जाऊँगा। आनेमें पाँच बज जायेंगे।'

ये आफिस चले गये। दुपहरमें दोसे पाँच बजेतकका समय मैंने सिलाई, कढ़ाई वगैरहमें बिताया। पाँच बजनेके बाद मैंने इनकी राह देखना शुरू किया। छः साढ़े छः हो गये, तब मैं चिन्ता करने लगी। फिर भी मनमें सोचती रही कि थोड़ी देरमें तो आ ही जायेंगे। पर सात बजनेके बाद मुझसे नहीं रहा गया। मनमें तरह-तरहके कुविचार आने लगे और आँखोंसे आँसू गिरने लगे। आध घंटा मैं खूब रोयी। रोते-रोते सोचने लगी—'यदि रातभर ये घरमें नहीं लौट सके तो मेरा क्या होगा। कलकत्तेमें मैं तो बिल्कुल नयी हूँ। इनको ढूंढ़ने जाऊँ? सुना है इस शहरमें एक्सीडेन्ट (दुर्घटना) भी बहुत होते हैं। पिताजीको तार देने जाऊँ तो मुझे पोस्ट-आफिस-का रास्ता भी ठीक मालूम नहीं था। और इधर रात होती जा रही थी।

साढ़े सात बजे मेरा रोना कुछ कम हुआ। मुझे कुछ ख्याल आया। घरमें गुरु महाराजका एक छायाचित्र (फोटो) था, जिसकी ये मनोभावसे पूजा करते थे। मैंने गुरु महाराजको कभी देखा नहीं था, इसलिये मेरे मनमें उनके प्रति कोई भक्ति नहीं थी। परन्तु इनके साथ मैं भी प्रतिदिन फोटोको प्रणाम अवश्य करती थी। उसी फोटोकी मुझे रोते-रोते याद आ गयी। मैं फोटोके पास जाकर प्रणाम करके बोली—'यदि गुरु महाराज सच्चे होंगे तो ठीक आठ बजे अपने भक्तको यानी मेरे पतिको घरमें पहुँचा देंगे। आठ बजेतक यदि इनका आना न होगा, तब तो मैं इन गुरु महाराजपर कभी विश्वास नहीं करूँगी।'

बस, इतना कहकर मैंने घड़ी गुरु महाराजके फोटोके सामने रख दी और मैं दीवालके पास जाकर बैठ गयी। घड़ीकी सूई अपनी गतिसे चल रही थी। इधर मेरे मनकी अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। इतनेमें पौने आठ हो गये। अब पंद्रह मिनटमें गुरुपर विश्वास करना या न करना——इसका फैसला मैं करनेवाली थी।

आठ बजनेमें पाँच मिनट रहे तब मेरे मनमें विचार आया कि अब ये नहीं आ सकते। और इतना सोचते ही मैंने आँखें बंद कर लीं। एक ही मिनट बाद मेरे कानोंमें इनके पैरके जूतोंकी आवाज आयी। मैंने आँखें खोलीं। मैं विश्वास न कर सकी अपनी आँखोंपर। इन्होंने मेरी रोयी-सी सूरत देखी और कहा—'तुम रो रही थीं क्यों? क्या करूँ, मुझे बहुत देर हो गयी! मैं ठीक समयपर घर नहीं लौट सका।'

मैंने इनकी बातोंपर ख्याल नहीं किया। इनको देखते ही मेरी

नजर घड़ीकी ओर गयी। आठ बजनेमें सिर्फ तीन मिनट बाकी थे। एकाएक मेरी नजर गुरु महाराजके फोटोपर गयी और जमीनपर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुचरणोंमें मेरा यही सर्वप्रथम भक्तिपूर्ण प्रणाम था। तबसे गुरुचरणोंमें मेरी श्रद्धा दृढ़ हो गयी। फिर मैंने इनको सारी कहानी सुनायी। ये बोले—'अरे रे! मेरे गुरुमहाराजको तुमने कितना कष्ट दिया। अरे, इस तरह गुरुकी परीक्षा नहीं ली जाती। गुरुचरणोंमें मन-ही-मन विश्वास करना चाहिये।' फिर प्रणाम करके बोले—'सद्‌गुरुनाथ! मेरी पत्नीका अपराध क्षमा कीजिये।'

—श्रीमती तारा पण्डित, एम० ए०

—:◉:—

गंगाजलका प्रभाव

यों तो आयुर्वेदमें गङ्गा-स्नान एवं उसके जलपानका विशेष महत्त्व वताया गया है; किन्तु जिसकी चर्चा नहीं की गयी है, वह भी मेरे अपने व्यवहारमें प्रत्यक्ष हो गया है। वात यह है कि मेरे पेटमें अक्सर दर्द हो जाया करता था। उस समय 'सल्फा' दवाइयोंका प्रचलन न हो सका था, जिसके कारण डाक्टरोंकी शरणमें जाना आवश्यक हो जाता था और उसके लिये अनावश्यक व्यय करते-करते मैं तंग आ गया था। एक बार गाँवमें हैजेका प्रकोप हो उठा, इसलिये सभी कुओंमें 'ब्लीचिंग पाउडर' डाल दिया गया। फलस्वरूप कुएँका पानी पीना कठिन हो गया। वरसातका समय था, फिर भी मैंने गङ्गाजल (जो कि लाल रंग हो जाता है) पीना शुरू कर दिया। स्वाद अच्छा लगनेके कारण मैं सालों वही पीता रहा और यह क्रम तवतक जारी रहा, जवतक मैं यहाँसे पटना न चला गया। वहाँ होस्टलमें रहकर पढ़ रहा था, अतः गङ्गाजल पीना कठिन था। बी० ए० (आनर्स) करनेके वाद एम० ए० की पढ़ाई समाप्त होने-पर आयी तो पेटमें पुनः दर्द आरम्भ हो गया। अव मैं समझ गया कि इस छः सालमें दर्द न होनेका मुख्य कारण गङ्गाका पहलेका पीया हुआ पावन जल ही था, जिसका असर आजतक था। अतः मैंने फिर गङ्गाजल पीना शुरू कर दिया (१९५२) और आज छः सालसे ऊपर हो रहा है—ईश्वरकी कृपासे आजतक मेरे पेटमें दर्द न हो सका है।

अबतक यह मेरा वैयक्तिक प्रयोग था, किंतु मैंने इसे अपने गाँवके अन्य लोगोंको भी बताया और ईश्वरकी कृपासे उन्हें भी लाभ हुआ है।

अतः आज मानव-समाजकी भलाईकी दृष्टिसे इसे आपके पास भेज रहा हूँ कि धर्मकी दृष्टिसे न भी हो तो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे गङ्गाजलका सेवन बड़ा लाभप्रद है। इसे सभी जाति एवं सम्प्रदाय-के लोगोंको व्यवहार करके अवश्य देख लेना चाहिये।

—रमेन्द्रप्रसाद सिंह 'विद्यार्थी'

—:●:—

लन्दनके टैक्सीवालेकी सहृदयता

रूस और इंग्लैण्ड की यात्रासे लौटी हुई एक विदुषी महिलाने अपना लन्दनका एक अनुभव सुनाया था। उसमें वहाँके टैक्सीवाले-की सहृदयताका एक बड़ा सुन्दर चित्र खींचा गया था। उन्होंने कहा—

'मैं लन्दनके एक बगीचेमें बैठकर पुस्तक पढ़ने लगी। पुस्तकमें इतना रस आया कि उसको पूरा करनेके बाद मैंने देखा तो रात्रि-के ग्यारह बजे थे। सारा लन्दन शहर आरामसे सो रहा था। शहर-की ट्रामें तथा बसें बंद हो चुकी थीं। दूर राहपर नजर डालनेपर टैक्सीका भी मिलना मुश्किल था।

मेरा निबासस्थान बगीचेसे कई मील दूर था। अतः बिना सवारीके वहाँ जाना मेरे लिये अशक्य था। मैं खड़ी सोच रही थी कि क्या किया जाय। इसी बीचमें मुझे वहाँ खड़ी देखकर दूरसे एक टैक्सीवाला मोटर लेकर वहाँ पहुँचा और अत्यन्त विनयपूर्वक उसने मुझसे मोटरमें बैठनेके लिये अनुरोध किया तथा मुझे कहाँ जाना है, पूछकर नाम-पता नोट कर लिया। मोटर चली। रास्तेमें हमलोगोंने कोई बात नहीं की। ठिकानेपर पहुँचकर मोटर रुकी। दरवाजा खोलकर मोटरवालेने मुझे विनयपूर्वक उतारा और सलाम करके कहा—'मैडम! गुड नाइट!'

मैंने पूछा—'कितने पैसे दूं?'

उसने कहा—'बहिन ! कुछ भी नहीं देना है। आज रात्रिको मैं आपको हमारे देशकी अतिथिके रूपमें यहाँ लाया हूँ। मैंने देखा —आप अकेली हैं; रातका समय है और घर जानेके लिये सवारी-की बाट देख रही हैं। मुझे कमाईकी आवश्यकता नहीं थी, परन्तु लन्दनके टैक्सीवाले परदेशियोंके प्रति अपने कर्तव्यपालनमें सदा तत्पर हैं, इसका विश्वास दिलानेके लिये ही मैं आपको यहाँ छोड़ने आया हूँ। सलाम !'

इतना कहकर उसने शिष्टतापूर्वक अभिवादन किया और टैक्सी चला दी। उस दिन मैंने देखा कि पाश्चात्त्य संस्कृतिके लिये हम चाहे सो कहें; परन्तु सभ्यता, ईमानदारी और नारी-सम्मानके लिये मैं सदा उनकी प्रशंसा करूँगी। भारतको पाश्चात्त्य प्रजासे वे गुण अवश्य सीखने चाहिये।

—शान्तिलाल दीनानाथ मेहता

—:•:—

सच्ची सर्राफी

एक साधारण व्यापारी था। उसका नाम था—सत्यदेव। इस छोटे-से व्यापारीने सच्ची तंगीके समय काम आवे, इसके लिये वचा-बचाकर दो सौ रुपये इकट्ठे किये और उन्हें धर्मचन्द नामक एक व्यापारीके यहाँ अमानत जमा करा दिया। इसके बाद धीरे-धीरे सत्यदेवका व्यापार बढ़ा और वह लाखोंका आसामी बन गया। शहरके पैसेवालोंमें उसकी गिनती होने लगी। पर सदा सबके एक-से दिन नहीं रहते। समय पलटा और सत्यदेव बड़े नुकसानमें आ गया। सारा कारबार नष्ट हो गया और दीवाला निकल गया—यहाँतक कि भोजनके लिये चिन्ता रहने लगी।

एक दिन सत्यदेव सोचने लगा—'क्या करूँ?' इतनेमें उसे याद आया कि धर्मचन्द सेठके यहाँ उसने दो सौ रुपये अमानत जमा करवाये थे। उसने बही उठायी और धर्मचन्द सेठका खाता निकालकर देखा, तब पता लगा कि दो सौ रुपयोंके नामके बदलेमें उनके दो हजार रुपये अपने खातेमें जमा हैं। उसे याद आ गया कि दो हजार रुपये उनसे खाते पेटे ब्याजपर उधार लिये थे और फिर एक पैसा भी उनको वापस दिया नहीं गया। बही नीचे रखकर सत्यदेव बड़े विचार और चिन्तामें पड़ गये।

ईश्वरके इच्छानुसार उसी समय धर्मचन्द सेठका मुनीम दो सौ रुपये लेकर आया और रुपये सत्यदेवकी गोदमें रखकर बोला—'हमारे सेठने ये आपके अमानत रक्खे हुए दो सौ रुपये भेजे हैं और

साथ ही यह कहलवाया है कि 'कभी काम पड़े तो याद कीजियेगा। हमारे जो दो हजार रुपये आपमें बाकी निकलते हैं, उनके लिये चिन्ता न करें। वे रुपये तो व्यापारके लिये हमने ब्याजपर दिये थे। उन रुपयोंका आपके व्यापार खातेसे सरकारकी ओरसे जो कुछ हिस्सा सबको मिलेगा, हमको भी मिल जायगा। ब्याजू रुपयों-से अमानतके रुपयोंका कोई सम्बन्ध नहीं होता।'

धर्मचन्दकी जगह दूसरा व्यापारी होता तो वह अपने खातेमें जमाखर्च करके बचे हुए १८००) पर ब्याज लगाकर जितनी रकम होती, उसको शीघ्र चुका देनेके लिये अपने मुनीमको इस बुरी स्थितिमें भी सत्यदेवके पास भेजता!

—लल्लूभाई बकोरभाई पटेल

—:●:—

कानूनी कर्तव्यसे ईश्वरीय कर्तव्यकी श्रेष्ठता

मेरे एक मित्रने एक तारबाबूकी ईश्वरीय कर्तव्यनिष्ठाका वर्णन सुनाया– 'जैतपुरसे मेरा पडधरीको तबादला हो गया। पहले मैं अकेला ही वहाँ गया। एक दिन संध्याको मैं घूमकर आया तो घरपर एक अन्जान आदमीको मैंने खड़े देखा। उसने मेरा नाम पूछकर तुरंत कहा—'आपका पुत्र सख्त बीमार है और आपकी पत्नीने आपको अभी बुलाया है।' 'आप कौन हैं? आपको कहाँसे खबर मिली? किसने आपको समाचार भेजा?' आदि मेरे एक ही साथके बहुत-से प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही उसने कहा—'ट्रेनका समय हो गया है, अतः जल्दी चलिये। अपने ट्रेनमें बात करेंगे।' मैं तुरन्त चल दिया।

रास्तेमें उसने बतलाया—'मैं तार-आफिसमें काम करता हूँ। आपकी पत्नीका दिया हुआ तार मैंने पढ़ा। जल्दीमें वे 'लेट फीस' भरना भूल गयी होंगी। अतएव कानूनसे वह तार आपको कल सबेरे मिलता। पर तार देरसे मिलनेका परिणाम मैं पहले भोग चुका हूँ। तार देरसे मिलनेके कारण ही मैं अपनी स्वर्गीया पत्नीसे अन्तकालमें न मिल सका था। उस दिनसे मैं इस प्रकारकी स्थितिमें अवैध रूपसे लोगोंकी सहायता करना चाहता हूँ। यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे आपको यह समाचार पहुँचाना मेरे लिये अपराध है। तो भी मैं तुरंत नौकरीके समयमें भी छुट्टी लेकर बसपर सवार हो यहाँ दौड़ा आया हूँ। ईश्वरने चाहा और सब भले-चंगे मिले तो मैं अपने इस प्रयत्नको सफल समझूँगा।'

कानूनी कर्तव्यसे मानवताकी भावना कितनी ऊँची है, इसकी प्रयत्क्ष प्रतीति उन्होंने मुझे करवा दी। मैं आपका बड़ा ऋणी हो गया। मैं इस प्रकार कहने जा रहा था कि बीचमें ही उन्होंने मुझे रोककर कहा—'अपने विभागके द्वारा सौंपे हुए कर्तव्यका पालन करते-करते ही ईश्वरके द्वारा सौंपे हुए कर्तव्यका पालन करनेका सौभाग्य मुझे आपकी मार्फत मिला, इसलिये मैं आपका ऋणी हूँ।'

मैंने मन-ही-मन उनको नमस्कार किया। मेरे लिये उनको आर्थिक नुकसान न हो, यह सोचकर मैंने उनको बस तथा ट्रेनका किराया देना चाहा, परंतु उन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा—'कर्तव्य-पालनके संतोषको पैसोंसे मत ढकिये।' कैसी मानवता! कर्तव्यका कितना सुन्दर अर्थ!

रात्रिको मैं ठीक समयपर पहुँच गया। मैंने देखा मेरा अनिल मानो अन्तिम श्वास खींच रहा है···परंतु ईश्वर कितना दयालु है। मेरे मिलनेके आनन्दसे अथवा ईश्वरीय संकेतसे उसके स्वास्थ्यमें तुरंत सुधार दिखायी दिया और थोड़े ही दिनोंमें वह अच्छा हो गया। डाक्टरने भी इसे चमत्कार माना और कहा कि 'आप ठीक समयपर न पहुँचे होते तो ऐसी आशा नहीं थी।'

आयुकी डोरी तो ईश्वरके हाथ है, यह सत्य है। परंतु एक मनुष्यकी मानवताने ही मेरे पुत्रको बचाया, मुझे तो ऐसा लगता है।

—एच०एच० त्रिवेदी

—:●:—

नवरात्र-व्रतकी महिमा

सन् १९२७ की बात है। अपनी मूर्खताके कारण ही सेंट जोन्स कालेज, आगरेकी दो सौ रुपये माहवारकी प्रोफेसरी छूट गयी थी। मुझे और मेरे परिवारको बड़ी परेशानी हुई। बुलन्दशहरमें वकालत शुरू की; पर मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं Teacher (शिक्षक) से Cheater (धोखेबाज) बन गया। फिरसे कालेजमें कहीं नौकरी मिले चाहे वह १००) माहवारकी ही हो—इस परेशानीमें और कुछ प्रायश्चित्तके रूपमें मैंने नवरात्र-व्रत रखनेका संकल्प किया। पूज्य माताजीने भी व्रत मेरे कल्याणके लिये रक्खा। व्रतके नियम-विधि-विधान इत्यादि मुझे कुछ नहीं आता था। दिन-भर एकान्तमें बैठकर गायत्री-मन्त्र जपता रहता था। शामको फलाहार कर लेता था। सातवें दिन चित्तकी अपने-आप ही कुछ ऐसी एकाग्रता हो गयी कि जब मैं पासके कुएँकी प्याऊमें बैठा हुआ जप कर रहा था, उसी समय किसीने भाई डाक्टरकी दूकान-पर खबर दी कि हमारे घरमें आग लग गयी है। सभी पानी लेकर दौड़े। उसी प्याऊमेंसे मेरे पास ही रक्खे हुए सब पानीसे भरे घड़े और डोल इत्यादि लेकर शीघ्रतासे घर गये। अग्नि शान्त हो गयी! पर सच बात है कि मेरे कानोंमें न आग लगनेकी और न कुएँपरसे पानी ले जाने और न सबके घरको दौड़नेकी आवाजें पड़ीं और मैं अपने जपमें एकाग्रतासे लगा रहा। जप समाप्त होनेपर मुझे सबने दिखावटी, बनावटी, ढोंगी और मूर्ख कहा कि मैं आग बुझानेको

न दौड़ा। मैंने सबको विश्वास दिलाया कि मुझे जरा भी आग लगनेका भास होता तो मैं अवश्य ही मालाको फेंककर और जप छोड़कर आग बुझानेमें लग जाता—पर किसीको विश्वास क्यों होने लगा? सच बात तो यह है कि इन तीस वर्षोंमें भी मुझे ऐसी एकाग्रताका बहुत प्रयत्न करनेपर भी फिर अनुभव आजतक नहीं हो पाया। भविष्यकी प्रभु ही जानें। नौ दिनके व्रत बड़े आनन्द-पूर्वक समाप्त हुए। आर्यसमाजी परिवारमें पले होनेके कारण मुझे विधिपूर्वक यह व्रत करनेका कुछ भी ज्ञान नहीं था और न कभी इसको जाननेका ही प्रयत्न किया था।

दसवें दिन, मुझे रात्रिमें स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णजीके दर्शन हुए। उन्होंने मुझसे कहा कि 'बच्चे! गीता पढ़ो!' यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

दूसरे दिन, आर्यसमाजी होनेके कारण इस स्वप्नपर मैंने अधिक ध्यान न दिया। मैं श्रीकृष्ण भगवान्‌की महिमाको जानता ही नहीं था! मैं उनको अवतार भी नहीं मानता था। हाँ, उन्हें एक महान् योगिराज मानता था। पर आश्चर्यकी बात यह हुई कि स्वप्नमें गीताके पढ़नेका आदेश देकर ही उनकी मुझपर कृपाका अन्त नहीं हुआ। तीसरे ही दिन, एक हमारे निकटके रिश्तेदार दिल्लीसे बहुत-सी पुस्तकें खरीदकर लाये थे और नैनीताल जानेसे पहले वे एक रातको हमारे यहाँ ठहरे। जाते समय वे अपनी सब पुस्तकें साथ ले गये, पर भूलसे ज्ञानेश्वरी गीता मेरी मेजपर ही छोड़ गये। जब एक दिन बाद मैंने ज्ञानेश्वरीको देखा और कुछ पढ़ा, तब मुझे स्वप्नकी फिर याद आयी कि भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने केवल

मुझे गीता पढ़नेका ही आदेश नहीं किया, बल्कि अपनी महान् कृपासे गीता भी मेरे पास भेज दी। उसे पढ़ते-पढ़ते ही मैं मूर्ति-खण्डकसे मूर्तिपूजक न जाने कैसे बन गया और तबसे शायद कोई गीताकी पुस्तक ही ऐसी रही हो, जो मैंने न पढ़ी हो। सिवा उसके पढ़नेके मुझे किसी और विषयकी पुस्तक पढ़नेमें आनन्द ही नहीं आता—यह सच बात है। नवरात्र-व्रतके समाप्त होनेके दस दिन बाद मेरी 'श्रीराम कालेज आफ कामर्स' दिल्लीमें १५०) माहवार-पर प्रोफेसरीके पदपर नियुक्ति हो गयी। चार वर्ष हुए वहाँसे ६४०) माहवारी पाते हुए मैं रिटायर हुआ था और उसके पश्चात् यहाँ जम्मूमें एक डिग्री कालेजका प्रिंसिपल हूँ।

लिखनेका अभिप्राय यही है कि नवरात्र-व्रतसे मेरे सब संकट दूर हो गये। तबसे अबतक मैं और मेरी माताजी दोनों नवरात्र-व्रत करते रहे हैं। मैंने बहुत-से दुखी मनुष्योंको नवरात्र-व्रतका नुसखा बताया है और खुशी इस बातकी है कि इस व्रतके करनेसे सबके ही संकट दूर हो गये और वे सब नियमपूर्वक प्रत्येक नवरात्र-व्रत रखते हैं। 'कल्याण' के पाठक इसके पढ़नेसे व्रतकी महिमा स्वयं समझकर गीता और नवरात्र-व्रतको अपनायेंगे, इसी उद्देश्यसे उनकी सेवामें कुछ अपने बारेमें लिखनेका साहस किया है।

—एम० एल० शाण्डिल्या

—:●:—

भगवन्नामसे प्रत्येक कष्ट कट गया

आजसे करीब चार साल पहलेकी बात है कि मैं दर-दरकी ठोकरें खाता हुआ अकलेश्वर पहुँच गया। वहाँ कुछ दिन अपने एक रिश्तेदार केयहाँ रहकर मैं पैदल ही भड़ौंचके लिये चल दिया। मेरे पास जहर खानेतकके लिये पैसा नहीं था, क्योंकि चार माससे मैं बेकार था। रिश्तेदारीमें माँगना उचित नहीं जाना। इसलिये (नाम तो ठीक याद नहीं) एक नदीके किनारे-किनारे चलता गया। करीब तीन मील चलनेपर भड़ौंच शहर, जो नदीके उस पार बसा हुआ था, दिखायी दिया। मैं बहुत थक चुका था और मन-ही-मन कातर भावसे प्रार्थना कर रहा था कि 'परमेश्वर ! मुझे उबार ! हे राम ! मेरी डोरी तेरे हाथ है। मैं बड़ा ही अधम हूँ। हे राम ! हे राम !! नदी इतनी चढ़ी थी कि उसमें बिना नावके पार होना कठिन था। उस नदीके किनारे करीब तीन-चार सौ गजतक कोई भी पेड़ या झाड़ी नहीं थी, जहाँ बैठकर मैं अपने पिछले पापोंका प्रायश्चित्त करनेके लिये दो आँसू बहा लेता। मेरा हृदय क्रन्दन कर रहा था। इतनेमें मैं क्या देखता हूँ कि एक ब्राह्मण देवता किनारेकी ओरसे आ रहे हैं। वे मेरे पास आकर रुक गये और मुझसे पूछने लगे कि 'बेटा ! क्या बात है, तुम इतने दुखी क्यों हो ?' उनकी अमृतमयी वाणीने मेरे हृदयपर इतना असर किया कि मैं झट उनके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। उन्होंने अपने पवित्र करकमलोंद्वारा मुझे उठाया। दुःखित हृदयके कारण मुझे अपनी कहानी उनको सुनानेका मौका नहीं मिला। बिना ही

कुछ कहे-सुने वे दीनबन्धु मेरे हाथपर दो आने पैसे, एक अमरूद और एक केला रखकर बोले—'हिम्मत न हारना। नावकी उतराई देकर शहर जाकर कोशिश करना। सम्भव है, कृपानिधान, दयालु प्रभु तुम्हारी सहायता करें। किंतु उसका स्मरण कभी नहीं छोड़ना!' इतना कहकर वे वहाँसे चल दिये। मैं उन्हें नमस्कार करनेके लिये पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा; किंतु पाँच मिनटका समय भी नहीं व्यतीत हुआ—जब उठा तो वे दीनबन्धु ब्राह्मण सज्जन वहाँसे चले गये थे। मेरी आँखोंने उन्हें कई जगह ढूँढ़ा, परन्तु वे दिखायी नहीं दिये। मैं बड़ी परेशानीमें पड़ गया, दिलने गवाही दी की प्रभु आये, परन्तु मैंने पहचाना नहीं। अस्तु!

मैं निरन्तर प्रभुका स्मरण करता हुआ नावपर सवार होकर शहरके घाटपर उतरा तो एक व्यक्ति, जो शायद घाटवाला था, बोला—'बाबूजी! नावकी उतराई चार आना प्रति सज्जन है।' मैं उसके ये शब्द सुनकर सहम गया। मैंने सोचा—'शायद करुणा-निधान फिर मेरी परीक्षा ले रहे हैं।' मेरे पास सिर्फ दो ही आने थे, मैं मनमें विचार करने लगा कि 'अब क्या करूँ, इससे क्या कहूँ। नयी जगह, न जान, न पहचान। हे भगवन्! यह क्या हो गया? क्या इस जगह मेरी मिट्टी पलीद होगी?'

पैसे देनेमें देर करते देखकर नाववाला बोला—'बाबूजी! क्या बात है? आप सुस्त क्यों हो गये?' अचानक मेरे मुँहसे निकल गया—'भाई! मेरे पास सिर्फ दो ही आने हैं। इन्हें ले लीजिये, शेष दो आनेका कार्य मुझसे करा लीजिये। बड़ी कृपा होगी।' वह कुछ देर खड़ा सोचता रहा, फिर बोला—'आइये, मेरे साथ चलिये।'

वह आगे-आगे चला, मैं पीछे-पीछे। मुझे वह एक सज्जनकी दुकान-पर ले गया और बैठाकर वोला—'आप बैठिये, मैं अभी आता हूँ।' इतना कहकर वह चला गया। करीव आध घंटे वाद लौटा तो उसके साथ तीन-चार सज्जन और थे। आते ही पूछा—'आप नौकरी करना चाहते हैं?' मैंने कहा—'जी, मुसीवतमें हूँ। बड़ी कृपा होगी।' कुछ अन्य बातोंके उपरान्त उन्होंने आपसमें परामर्श करके कहा—'आपको भोजनके सहित चालीस रुपये मासिक दिये जायँगे और कार्य केवल यही है कि प्रातःसे सायंतक इस मकानके मरम्मतसम्बन्धी कामको सँभालते रहें—यह देखते रहें कि मजदूर ठीक काम कर रहे हैं न।' मैंने इस कार्यको भगवान्‌की कृपाकी देन समझा और काम करने लगा। भगवन्नाम-जप करता हुआ मैं चार महीनेतक काम करता रहा। मकानका काम पूरा होनेके बाद मैं अपने जन्मस्थानको लौट आया। उस दिनसे मुझे भगवत्कृपासे न तो कोई वीमारी हुई, न अन्य कोई कष्ट हुआ। मुझे ऐसा लग रहा है—

जा पर कृपा राम कै होई। ता पर कृपा करइ सब कोई॥

'जिसपर राम कृपा करते हैं, उसपर सभी कृपा करते हैं।' यह घटना सत्य है, इसलिये मैं संसारके प्रत्येक माता, पिता, वहिन, वन्धुसे प्रार्थना करूँगा कि वे भगवान्‌की प्रार्थना करें तथा भगवन्नामको कभी न भूलें। इसकी महिमा वहुत बड़ी है।

—रमेशचन्द्र गोस्वामी

—:●:—

सेठकी उदारता और विशाल हृदयता

सेठ श्रीजगन्नाथजीके यहाँ विवाह था। रोकड़ उनके विश्वासी मित्र श्रीलालजीके पास थी। विवाह सुसम्पन्न हो गया। हिसाब जोड़ा जाने लगा। एक हजार रुपये घट रहे थे। श्रीलाल-जी बहुत चिन्तित थे। कहीं कुछ याद नहीं आ रहा था और रुपये मिल नहीं रहे थे। इतनेमें सेठ जगन्नाथजी आ गये। पूछा—'श्रीलाल! किस फिक्रमें हो?' श्रीलालजीने कहा—'एक हजार रुपये घट रहे हैं। बहुत खोजनेपर भी पता नहीं लग रहा है। न किसीको दिये ही याद आ रहे हैं।' सेठजीने तुरंत हँसते हुए कहा—'अरे, तुम भूल गये क्या? विवाहके दिन मैं तुमसे हजार रुपये माँगकर ले गया था न?' श्रीलालजीने कहा—'मुझे तो याद नहीं पड़ता।' सेठजी बोले—'तुम काम-काजकी भीड़में भूल गये। मेरे हस्ते लिख दो?' सेठजीकी बात ही सत्य होगी, मैं भूलता होऊँगा—यह समझकर श्रीलालजीने रुपये-नाम लिख दिये और हिसाब पूरा कर दिया।

दीवाली आयी। नया मुहूर्त तथा लक्ष्मी-पूजन होगा। सब जगह झाड़-बुहार होने लगी। सेठजीका नियम था—वे रोकड़की कोठरीका कोना-कोना स्वयं देखते। टटोलते हुए उनका हाथ कोने-में रखी एक थैलीपर पड़ा। गिनकर देखा तो पूरे एक हजार रुपये थे। वे थैली हाथमें लिये हँसते हुए बाहर निकले। उस समय श्रीलालजी आये हुए थे। सेठ जगन्नाथजीको हँसते देखकर उन्होंने

विनोदसे पूछा—'क्या मिल गया,—जो इतने प्रसन्न हो रहे हैं, सेठ जीने कहा—'तुम्हारे खोये हुए हजार रुपये ।' श्रीलालजीने पूछा—'कैसे ? कौन-से रुपये ?' सेठजी बोले—'विवाहके हिसाबमें जो कम हो रहे थे और तुम जिनके लिये परेशान थे ।' श्रीलालजी बोले—'तो क्या वे रुपये आपने नहीं लिये थे ? नहीं लिये थे तो फिर कैसे कहा कि मैं ले गया था ? और अब ये कहाँ मिले ?' सेठ जगन्नाथजी ने कहा—'रुपये मैंने नहीं लिय थे; परंतु तुमको बहुत चिन्तित देखकर मैंने कह दिया कि 'मैं ले गया था ।' मैं जानता था कि तुमने तो लिये ही नहीं हैं, कहीं खर्चमें लगे होंगे या तुम कहीं रखकर भूल गये होगे । इससे मैंने वैसा कह दिया । मैं न कहता तो तुम्हारी चिन्ता और भी बढ़ जाती । आज मैं भीतर देख रहा था तो एक कोनेमें पड़ी थैली मिल गयी । जान पड़ता है, तुम रखकर भूल गये थे ।' सेठ जगन्नाथजीकी बात सुनकर श्रीलालजी गद्‌गद् हो गये तथा सेठके प्रति उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी । धन्य सेठकी उदारता और विशाल हृदयताको ।

—सी० एल० गुप्त

—: ● :—

ईमानदारीका आदर्श

बाबू जगनरामजी एक साधारण व्यापारी थे, परंतु अपनी ईमानदारीमें पक्के थे। बहुत बड़ा कारोबार नहीं था, साधारण गल्ले और किरानेकी दूकान थी। आढ़तमें भी माल आता था। एक बार किरानेका बाजार बहुत चला। आढ़तियोंका माल भी बहुत ज्यादा आने लगा। एक मित्रसे कारोबारमें लगानेको रुपये मिल गये, जिससे आढ़तके काममें बहुत सहूलियत हो गयी। एक आढ़तियेके यहाँसे बहुत-सा जीरा बिकनेको आया। उस समय जीरेका बाजार मंदा था, बिक नहीं सका। आढ़तियेने जल्दी बेचनेको लिखा। जगनरामजीने चेष्टा की, पर नहीं बिक सका! आढ़तियेकी आतुरता देखकर इन्होंने उसको लिख दिया कि तुम्हारा जीरा अमुक भावमें बिक गया। इस भावमें उसे घाटा था। इन्होंने सोचा कि आढ़तियेको रुपयेकी आवश्यकता है—इसीसे वह मंदे भावमें बेचना चाहता है। उसको रुपये भेज देंगे। बाजार बहुत ही मंदा है, इससे मंदा और क्या होगा। आगे चलकर बाजार तेज हुआ तो ठीक है, नहीं तो अपने थोड़ा-बहुत घाटा लग जायगा।

कुछ ही समय बाद नयी फसलके माल आनेका समय आया। पर इस बार जीरेकी फसल बहुत खराब रही। बाजार तेज हो गया। भाव एकाएक बहुत अधिक बढ़ गये। जगनरामजीने माल बेच दिया। आढ़तियेको जिस भावमें बेचा लिखा था, उससे पाँच हजारका अन्तर पड़ गया। जगनरामजीने सोचा—आढ़तियेका माल

था। बिक गया होता, तब तो दूसरी बात थी, पर माल तो अपनी गोदाममें ही था। वह बेचारा घाटेमें क्यों रहे ?' उन्होंने आढ़तियेको लिख दिया कि जीरा आपका बिका नहीं था। आपको रुपयेकी जल्दी थी, इसीसे आप घाटा खाकर बाजार-भाव बेचनेकी लिख रहे थे। मैंने आपको उस दिनके बाजार-भावसे बेचा लिख दिया था। पर वास्तवमें उस समय कोई खरीदार था ही नहीं। आपका माल पड़ा रह गया, अब बिका है और उसमें आपको खर्च व्याज निकालकर लगभग चार हजारका नफा हुआ है। हिसाब और रुपये साथ भेज रहा हूँ।'

आढ़तियेके पास पहले और भी माल था। उसे भी उसने मजबूरीसे घाटा खाकर बेचा था। उसके घाटेकी रकम लोगोंको देनी थी। वह बहुत चिन्तित था। अचानक, बिना किसी सम्भावनाके चार हजार रुपये आ गये। वह प्रसन्नताके मारे उछल पड़ा। उसका रोम-रोम जगनरामको आशीष देने लगा। कहना नहीं होगा कि इससे जगनरामकी साख बहुत बढ़ गयी और बहुत-से नये-नये व्यापारी उसीको माल भेजने लगे।

—हरबंस राम

—:●:—

भगवान्‌की कृपा तथा मुसल्मान सज्जनकी उदारता

यह वात सन् १९३६ की है। मेरी दूकान उस समय श्रीनगर (काश्मीर) में थी। दूकान विलायती मालकी सौदागिरीकी थी। हर सालकी तरह माल विलायतसे आया। मेरे छोटे भाइयोंकी दूकानें अन्यत्र भी थीं, जिनके साथ ऐसा व्यवहार था कि हर साल सितम्बर और अक्टूबरके महीनोंमें भी मैं उनको वीस-पचीस हजार रुपये भेजता था और वे मुझे मार्चमें सारा रुपया वापस कर देते थे। पर १९३६ के मार्चमें उन्होंने कुछ नहीं भेजा। इधर विलायत-का माल धड़ाधड़ आना शुरू हो गया। वहुत-सा माल तो इधर-उधरसे उधार लेकर छुड़ा लिया, परन्तु छः हजारका माल न छूट सका। जो माल १५ मार्चतक छूट जाना चाहिये था, वह एक महीने वादतक भी न छूट सका। उधर बैंकों तथा कराचीके आढ़तियोंकी चिट्ठियों और तारोंने नाकों-दम कर दिया। मानहानि होने लगी। आखिर नोटिस आ गया कि यदि वीस अप्रैलतक माल न छुड़ा लिया जायगा तो माल नीलाम कर दिया जायगा। इससे बहुत पुरानी दूकानकी इज्जत मिट्टीमें मिल जानेका भय हो गया। बहुत चेष्टा की—किसी तरहसे माल छुड़ाया जाय; परन्तु सब ओरसे निराशा हुई।

अन्तमें जब कोई उपाय नहीं रहा, तब मैंने यह निश्चय किया कि ऐसी बेइज्जतीसे तो मरना अच्छा है। अपनी दूकानमें अंग्रेजी दवाइयाँ भी थीं। एक विषकी शीशी निकालकर आत्मघातका पक्का निश्चय करके मैंने चिट्ठी लिख दी कि मेरी मृत्युके बाद

पुलिस किसी घर या दूकानके आदमीको तंग न करे। अब यह विचार आया कि इस कामको अंधेरेमें करूँगा। इससे चिट्ठी और विषकी शीशी अपने जेबमें रख ली। उस समय शामके चार बजे थे। अब सब कुछ बुरा लगता था और निराशा-ही-निराशा दिखायी देती थी।

मेरे दफ्तरका कमरा अलग था और उसमें श्रीगीताजी और 'कल्याण' हर समय पड़े रहते थे, पर अब मन किसी चीजको देखना या पढ़ना नहीं चाहता था। फिर भी यों ही बेमनसे गीताजीपर मेरा हाथ जा पड़ा और श्रीभगवान्‌जीकी प्रेरणासे नवम अध्यायके दर्शन हुए। उसके—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

(गीता ९। ३०-३१)

इन श्लोकोंको मैंने बार-बार पढ़ा। मेरा मन पलटा। भगवान्‌की कृपाकी ओर ध्यान गया। मैंने फिर विचार किया तथा भगवान्‌के आगे कातर-कण्ठसे प्रार्थना की और गीताके दूसरे अध्यायके—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

इस सातवें श्लोकको पढ़कर कहा—'प्रभो! मैं तो आपका सेवक हूँ, आपके शरण हूँ, मुझे रास्ता बताइये—मैं क्या करूँ।' प्रार्थनाके बाद ही मैंने निश्चय कर लिया कि 'अब आत्मघात

नहीं करूँगा।' उसी समय मैंने विषकी शीशी वापस रख दी। चिट्ठी फाड़ दी और सब कुछ सर्वथा प्रभुपर छोड़कर निश्चिन्त होकर बैठ गया। मैं बैठा ही था कि एक मुसलमान सज्जन—जो मामूली हैसियतके थे, जिनकी एक दूकान हमने अमीराकदलमें ४०) महीनेपर किराये ले रक्खी थी और पाँच महीनेका किराया भी नहीं दिया था—आये और बोले कि किरायेके २००) रुपयेका चेक दे दो।' मैंने बिना कुछ कहे चेक काट दिया। फिर बातों-ही-बातोंमें मैंने उनसे कहा—'ख्वाजा साहिब! हमें कारोबारके लिये पाँच-सात हजार रुपये चाहिये। आप हमारी कुछ मदद कीजिये।' उन्होंने उसी समय अपनी जेबसे आठ सौका चेक निकालकर दिया और कहा कि 'दो-तीन दिनों बाद मैं फिर रुपये लेकर आऊँगा।' वे समयानुसार फिर आये और एक सात हजारका चेक फिर दिया तथा कहा कि 'अगर और चाहिये तो और ला दूँगा। ज्यादा हो तो वापस कर देना।' मैंने रुपये ले लिये और भगवान्‌की कृपासे पाँच महीनेमें उनके सारे रुपये वापस कर दिये। रुपये देते समय न तो उन्होंने मुझसे कोई रसीद ली थी और न वापस लेते समय कोई सूद ही लिया।

इसके आठ-दस दिन बाद वे ही मुसलमान मित्र आठ-दस हजारका सामान—हीरेकी अंगूठियाँ, शालें लाये और कहा कि 'जितना सामान बिके, उसके मुनाफेमेंसे आधे पैसे तुम्हारे आधे मेरे।' प्रभु-कृपासे उसमेंसे भी काफी सामान बिक गया। प्रभुकी कृपा, गीताकी महिमा तथा मुसलमान सज्जनकी उदारताका कितना सुन्दर प्रमाण है यह।

—गोविन्दराम अरोड़ा

—:●:—

मानवताकी ज्योति

समाजमें गुंडेके रूपमें प्रसिद्ध व्यक्तिके प्रति लोगोंकी घृणा-दृष्टि होना स्वाभाविक है। परन्तु यह गुंडा भी एक मनुष्य है और इसके हृदयके किसी कोनेमें भी कभी-कभी मनुष्यताकी ज्योति जलती होगी, इस वातको लोग भूल जाते हैं। ऐसे ही गुंडा-तत्त्वके हृदयमें छिपी हुई मनुष्यताकी ज्योतिकी यह कहानी है--

गाँवका एक किसान अपनी बीमार पत्नीको लेकर उसकी चिकित्साके लिये राजकोटके अस्पतालमें आया। इधर-उधरसे इकट्ठे करके वह कुछ रुपये साथ लाया था। पत्नीको अस्पतालमें भरती करके वह कुछ सामान खरीदनेके लिये वाजारकी ओर चला। एक जेवकतरेकी दृष्टि उसपर पड़ी। किसानकी जेवमें नोट हैं, इस वात-को किसी तरह जानकर वह उसके पीछे हो लिया तथा उसकी जेव काटकर नोट ले गया। किसानको जव अपनी जेव कटनेका पता लगा, तव वह काँप उठा, उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया और वह भयभीत होकर रो पड़ा। लोगोंने कहा--'यह शहर है। सावधानी रखकर चलना-फिरना चाहिये। यों वदहवाश होकर चलोगे तो जेव कटेगी ही।'

इतनेमें ही उधरसे शहरका एक नामी गुंडा निकला। उसने एक अनजान किसानको इस प्रकार रोते देखकर कारण पूछा। उसको जव यह पता लगा कि वीमार पत्नीका इलाज करानेके लिये आये हुए किसानकी जेव कट गयी है, तव उसके हृदयके कोनेमें

छिपी हुई मनुष्यताकी ज्योति जगमगा उठी। उसको ऐसे गरीब-की जेब काटनेवालेपर रोष आ गया। उसने किसानको आश्वासन दिया—'तू शान्त हो, चिन्ता न कर। तेरे रुपये, चाहे जैसे हों, मैं ला दूँगा। रातको आठ बजे तू यहीं आ जाना।' किसानके हृदयमें कुछ ढाढ़स आया। उसने कहा—'बापजी! मेरे पैसे वापस ला दोगे तो तुम्हारी तुलना भगवान्‌से भी नहीं होगी। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।'

इसके बाद, समाज जिसको गुंडा मानता है, उसने अपने आदमियोंकी मारफत पता लगवाया और किसानकी जेब काटने-वालेको पकड़ लिया। किसानके रुपये उससे ले लिये तथा उसको धमकाकर निकाल दिया।

रातको आठ बजे किसान वहाँ पहुँचा, उसके पहुँचनेके पहले ही वह खड़ा किसानकी राह देख रहा था। किसानको चाय-पानी पिलाकर उसके रुपये उसे देकर कहा—'गिन लो, पूरे हैं न?' किसानके आनन्दका पार नहीं था। फिर उस गुंडेके नामसे प्रसिद्ध 'मानव' ने पाँच रुपये अपनी ओरसे देते हुए किसानसे कहा—'यह लो, दबादारू अच्छी तरह कराना, शहरमें कोई बदमाश तुझे हैरान करे तो मुझे यहीं खबर देना।'

किसान उसकी मानवताको देखकर गद्‌गद हो गया। उसकी आँखोंसे हर्षके आँसू बहने लगे। अनजान शहरमें इस प्रकार सहायता करनेवाले, शहरके समाजमें गुंडेके नामसे प्रसिद्ध इस पुरुषके प्रति किसानका हृदय वन्दन कर रहा था।

—:●:—

मोमिनकी ईमानदारी

कुछ समय पहलेकी बात है। सेठ श्रीलालजीके घरमें विवाह था। उन्होंने एक दिन पाँच सौ रुपयेकी एक थैली सदा बन्धुवत् घरमें आनेवाले मोमिन (मुसलमान) को दी और कहा कि 'घर-में दे आओ।' वह घर देनेको गया, पर वहाँ बड़ी भीड़-भाड़ थी। जिनको थैली देने गया था, उन्होंने ली नहीं। इधर श्रीलालाजीको भी फुरसत नहीं थी। मोमिनने वह थैली ले जाकर अपने घर रख दी। विवाह हो गया। रोकड़में पूरे पाँच सौ रुपये घट रहे हैं। श्रीलालजी चिन्तित थे और स्मरण कर रहे थे, पाँच सौ रुपये किसको दिये। इतनेमें मोमिन आ गया। उसने कहा—'भाई श्रीलाल! क्या सोच रहे हो?' श्रीलालने पाँच सौ रुपयेकी बात कही।' मोमिनने कहा—'वे पाँच सौ तो मेरे घर पड़े हैं। तुमने थैली दी थी, मैं घर गया; वहाँ किसीने ली नहीं, तब मैं अपने घर रख आया। अभी ला देता हूँ।' सेठ श्रीलालजीकी चिन्ता मिट गयी। मोमिनकी ईमानदारीका प्रकाश और भी प्रखर हो गया!

—चिरंजीलाल

—:●:—

भगवान्‌का भेजा बेटा

एक दिनकी बात है--रातको दूकान बढ़ाकर मैं घर आया। चाभी-वहीखाते यथास्थान रखकर सदाकी तरह हाथ-मुँह धोकर मैं गमछेसे मुँह पोंछ रहा था। इतनेमें मेरी पत्नीने आकर कहा--'अपनी पड़ोसिन कमला भाभीको आज भगवान्‌ने पुत्र दिया है।' ये शब्द सुनकर मैं चकित हो गया। मेरे आश्चर्यकी सीमा नहीं रही और मेरा आश्चर्य दूर हो, इसके पहले ही सचमुच कमला भाभी एक छोटे-से वच्चेको लेकर मेरे सामनेसे निकल गयीं।

मुझे पता था--कमला भाभीका विवाह हुए लगभग दस वर्ष हुए होंगे। परन्तु ईश्वरने उनकी कोखको खाली रक्खा था, उनकी मातृत्वकी पिपासा दिन-पर-दिन तीव्र होती जा रही थी। इस कारण इस अनपेक्षित घटनाको सुननेके लिये मैं खूव ही उत्सुक वन गया। कमला भाभीके अतृप्त मातृत्वको, उनके स्नेहभरे हृदयको मानो उल्लसित करती हो, वैसे ही यह सच्ची घटना मेरी पत्नीने मुझे यों सुनायी-----

'आज दुपहरकी वात है। कड़ी धूप थी। सव लोग भोजन करके आराम कर रहे थे। इतनेमें एक अधेड़ उम्रका अनजान आदमी आकर आँगनमें खड़ा हो गया। उसके हाथमें कपड़ेसे लपेटा हुआ एक नन्हा-सा वच्चा था। देखनेसे वह आदमी मध्यमवर्गका-सा प्रतीत होता था। साधारण मैले कपड़े तथा कहीं-कहीं लगी हुई पेवन्द उसकी स्थितिको स्पष्ट कर रही थी। गरमी और थकावटसे

पीड़ित उसके मुखपर निराशा और ग्लानिकी रेखाएँ स्पष्ट उभर आयी थीं। वह प्यासा था। जल पीकर उसने राहतकी लम्बी साँस ली, वह छायामें बैठ गया। बच्चा भी भूख-प्याससे तड़प रहा था और धीरे-धीरे रो रहा था और वह आदमी उसे छिपाने तथा चुप रखनेका व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। किसी बच्चेके रोनेकी आवाज सुनकर अपने बगलवाली माताजी, कमला भाभी आदि दौड़कर आये और उस बच्चेके बाबत आतुरतासे पूछ-ताछ करने लगे। उस आदमीने कहा—

'मैं वदनेराका रहनेवाला हूँ। इस कमनसीव बच्चेकी माँ इसको जन्म देकर प्रसूतिमें ही जाती रही। मेरे कुटुम्बमें मैं अकेला ही हूँ, अतएव स्वाभाविक ही इस बच्चेकी सारी जिम्मेवारी मुझपर आ पड़ी। मैं इस बिना माँके बच्चेकी माँ नहीं बन सकता। पर क्या करूँ? यदि कोई गृहस्थ इस बच्चेको अपनानेके लिये तैयार हो जाय तो मेरी और इस बच्चेकी हजारों मूक आशीषें उसपर बरस पड़ेंगी।'

इस करुण घटनाका सुनते ही पास ही बैठी हुई कमला भाभी-का मातृत्व जाग्रत् हो उठा। उनकी स्नेहभरी दृष्टि बच्चेके कोमल और सुन्दर वदनपर लग गयी। कुछ देर विचार करनेके बाद, मानो उन्होंने निश्चय कर लिया और वे बोलीं—'मैं इस बच्चेकी माँ बनकर इसकी सार-सँभाल करूँगी और मेरे हृदयका अमृत सींचकर इसको पालूँगी।'

कमला भाभीके इस आकस्मिक निर्णयसे सभी आश्चर्यमें डूब गये। उनकी सास-माताजी भी खूब नाराज हुईं और उलाहना देने

लगीं। कुछ ही देरमें कमला भाभीके स्वामी लक्ष्मण भाई भी वहाँ आ पहुँचे। वे भी सारी बातें सुनकर आश्चर्यमें डूब गये। कुछ ही क्षणों बाद सबको आश्चर्यमें डालते हुए लक्ष्मण भाई आगे बढ़े और उन्होंने बच्चेको उस अनजान आदमीके हाथोंसे लेकर स्वस्थताके साथ कमला भाभीको सौंप दिया और बच्चा भी मानो उसकी माँ ही मिल गयी हो, उनके हृदयसे चिपट गया।

आश्चर्यसे अवाक् हुए सबके मौनका भंग करते हुए लक्ष्मण भाई बोले—'इस समय मनुष्यके रूपमें ईश्वर तुम्हारी परीक्षा लेने आया है। इस अनाथ बालकका इसी घरमें आना, इसमें अवश्य ही कोई ईश्वरीय संकेत होगा। इससे बढ़कर पुण्य दूसरा और क्या हो सकता है? दुनिया या समाज चाहे जो कहे, परन्तु एक अनाथ बालकके जीवनमें प्राण भर देनेका तुम्हारा यह प्रयास कितना पुण्यमय है!' लक्ष्मण भाईकी लंबी और प्रभावोत्पादक विवेकवाणी सुनकर माताजीने भी कुछ सकुचाते हुए मनसे, बालकको अपनाने-की अनुमति दे दी। फिर उस अनजान मनुष्यसे, जिसमें कानूनकी दृष्टिसे कोई अड़चन न आये, ऐसी लिखा-पढ़ी करवा ली और इस प्रकार आजके शुभ दिन कमला भाभी भगवान्के द्वारा भेजे हुए बेटेकी माँ बन गयीं।

इस घटनाको सुनकर मैं गहरी विचार-मालामें गुँथ गया। कमला भाभी और लक्ष्मण भाईके साहस और उनमें वर्तमान सच्ची मानवताका मैं मन-ही-मन पूजा-भावसे वन्दन करने लगा।

—गुणवंतराय परमानन्द मालविया

—:●:—

आदर्श आतिथ्य

हमलोग तुलसी-स्याम गये थे। उस समयका एक प्रसंग लिख रहा हूँ--

तुलसी-स्याम जानेके लिये ऊना और राजुलासे वसद्वारा तथा डेडाँणसे बैलगाड़ीके द्वारा जाना पड़ता है। वसका रास्ता सुभीतेका था; पर एक तो चाँदनी रात थी; दूसरी गाड़ीमें विशेष सुख मिलनेका ध्यान था, इससे हमलोगोंने डेडाँणसे गाड़ीमें ही जानेका निश्चय किया।

डेडाँणसे हमलोग रातको साढ़े आठ-नौ वजेके लगभग निकले। चार-पाँच घंटे तो हँसी-मजाक तथा वातचीतमें बीत गये। इसके वाद जी ऊवने लगा। हम गाड़ीवालेसे वार-वार पूछने लगे—'अव कितनी दूर है?' गाड़ीवान जवाव देता—वस, तीन-चार खेत और है; परंतु गाड़ीवानके खेत पूरे होते ही नहीं। जव पूछा जाता, तव यही उत्तर!

कुछ देर वाद फिर पूछा तो गाड़ीवानने कहा—'जान पड़ता है, अपने रास्ता भूल गये हैं, खूव! रहे-सहे उमंग-उछाहपर भी पानी फिर गया।

थोड़ी देरके वाद गाड़ीवालेने कहा—'सामने कुछ दिखायी दे रहा है।' समीप पहुँचनेपर एक बुलन्द आवाज आयी—'अरे कौन है?'

हमने कहा—'वावा! हम रास्ता भूल गये हैं, हमें तुलसीस्याम जाना है।'

पहली आवाजमें भरी कठोरता दूर हो गयी और निरी मृदुता भरकर उमंगसे उसने कहा--'ओहो ! आओ, आओ, भाई ! मुझ गरीबकी झोपड़ीको पवित्र करो; तुम-जैसोंकी चरणधूलि मुझे कहाँ मिलनी है।' हमारी गाड़ीके पास एक रैवारी आ पहुँचा।

हमने कहा--'हमें रुकना नहीं है, तुम हमको रास्ता बता दो।'

बाबाने कहा—'अरे ! ऐसा भी हो सकता है ? यहाँतक आये और अब मेरे आँगनपर चरण रक्खे बिना ही चले जाओगे ? ऐसा भी कहीं चल सकता है ?'

हमलोगोंको उसके आग्रहके वश होना पड़ा।

बाबाने घरके लोगोंको जगाया और पुत्रवधूसे कहा—'मेहमान आये हैं; आटा सानो, भोजन तैयार करो।' (इस समय रातके ढाई बजे थे।)

हमने कहा—'बाबा ! हमलोग ब्राह्मण हैं, फिर हमें भूख भी नहीं है' हमलोगोंकी जाति सुनकर उसने भोजन करानेका आग्रह तो छोड़ दिया, पर उसके बदले भैंसका पक्का सेर दूध लाकर रख दिया और कहा, 'इस बार तो तुम्हें बिना जीमे जाने देता हूँ; परंतु लौटते समय तुम्हें इधरसे जीमकर ही जाना पड़ेगा। तुम्हारे आनेके पहले ही मैं बगलके गांवसे महाराजको बुलाकर रसोई तैयार रखूँगा।'

हमें उसके घरका वातावरण कुछ शोकभरा लगा। घरके मनुष्य ऐसे चलते थे, मानो उनके शरीरोंसे चेतन निकल गया है। वृद्धके मुखपर उदासी तैर रही थी। हमलोग पूछ बैठे। वृद्धने कहा—'मेरा जवान बेटा दो महीने पहले······।' वृद्धसे बोला नहीं गया, उसका गला भर आया।

हमने कहा—'दिलमें पुत्र-मृत्युके शोककी छाया घिरी है, फिर भी तुम आँगनपर आये अतिथियोंका इतना भाव-भरा स्वागत कर सकते हो ?'

वृद्धने जो उत्तर दिया, वह हमारी प्राचीन 'अतिथिदेवो भव' की भावनाके मस्तकपर मानों सोनेकी कलँगी लगाने-जैसा है—'संसारमें सुख-दुःखकी घटमाला, जन्म-मृत्युका चक्कर चलता ही रहता है। आंगनपर आये मेहमानका आगत-स्वागत न करें तो फिर हमारी आवरू ही क्या है। फिर मैं और ये मेहमान ही कितने दिनके ?'

वृद्ध रातके साढ़े तीन बजे एक गाँवतक चलकर हमें रास्ता बताकर लौटा और लौटते समय हमलोगोंको उधर होकर जानेका अत्यन्त आग्रह करता गया।

—मधुकान्त भट्ट

—:●:—

वे कौन थे ?

कुछ महीनों पहलेकी घटना है। मेरे पिताजीकी उम्र लगभग ५५ वर्ष की है। वे दोहाद (गुजरात) में थे। एक दिन अकस्मात् हृद्रोग तथा उष्णताकी शिकायत बढ़नेसे वे भयानक बीमारीके चंगुल-में फँस गये। मल-मूत्रके द्वार रुक गये। पेट फूल गया। नलिकाके द्वारा बड़ी कठिनतासे पेशाब करवाया जाता था। लगभग बीस दिन लगातार इसी अवस्थामें बीत गये। अन्न-पानी सब बंद था। बोलना-चलना बंद। बिल्कुल अवसन्न चारपाईपर लेटे रहते थे। बड़े-बड़े डाक्टर-हकीमोंका इलाज हुआ। करीब बारह-तेरह सौ रुपये खर्च हो गये पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। डाक्टर हकीमोंने आखिरी राय दे दी कि रोगी किसी हालतमें बच नहीं सकता और उन्होंने अपने हाथ टेक दिये। घरमें सबकी राय हुई, अब व्यर्थमें दवा क्यों करायी जाय। दवा बंद कर दी गयी। हमारी आँखें गङ्गा-यमुना-धार बनी हुई थीं। कोई उपाय हाथमें नहीं रहा। तब केवल दीनदयाल ईश्वरपर भरोसा करके हम पाँचों भाई श्रीमद्-भगवद्गीताका पाठ करने लगे। प्रत्येक अध्यायके अन्तमें कातर भावसे रामधुन करते। यों हमें ३०-३२ घंटे बीत गये।

इसी बीच अकस्मात् किसी एक महात्माने आकर हमारे दुःखका कारण पूछा। हमने सारी दुःख-दर्दकी कथा महात्माको सुना दी। महात्माने एक पुड़िया फाँकनेकी दवा दी और कहा कि 'इससे तुम्हारे पिता अच्छे हो जायँगे।' हमें महात्माकी बातपर

विश्वास नहीं था। जहाँ बड़े-बड़े डाक्टर कुछ नहीं कर सके, वहाँ इस पुड़ियासे क्या होना है। हमें विश्वास तो पूरा नहीं हुआ। पर और कोई उपाय था नहीं, हमने पुड़िया दे दी। आश्चर्यचकित हो गये सब-के-सब, जबकि पुड़िया देनेके करीब एक घंटे बाद ही पिताजीकी आँखें खुल गयीं। मुँह भी खुला। मल-मूत्रके द्वार भी खुल गये और पेट भी हलका हो गया।

सब घरके लोग, रिश्तेदार सभी दंग रह गये। देह-त्यागके लिये तैयार पिताजी डेढ़ घंटेमें ही पूर्ण स्वस्थ होकर खड़े हो गये। शरीरमें कमजोरी अवश्य थी, पर उन्होंने नया जीवन पाया।

यह कितना बड़ा आश्चर्य था। महात्माकी खोज की गयी, परंतु वे आजतक नहीं मिले। वे कौन थे, महात्मा ? भगवान् ? गीता माता ? या रामनाम ?

—**बंशीलाल एम० अग्रवाल बी० ए०**

—:●:—

विश्वासका फल

घटना मार्च १९१५ की है। मैं प्रयागमें इन्ट्रेंस दर्जामें पढ़ता था। गवर्नमेंट हाई स्कूलमें हम परीक्षा देने गये। उस समय इन्ट्रेंस परीक्षामें १२ पर्चे होते थे। प्रायः परीक्षा सोमवारको प्रारम्भ होकर शनिवारको समाप्त हो जाती थी। प्रत्येक दिन दो पर्चे होते थे। पहला पर्चा १० बजेसे १ बजेतक और एक घंटाके विश्रामके बाद २ बजेसे ५ बजेतक दूसरा पर्चा होता था। इस तरह ६ दिन-में बारह पर्चे हो जाते थे। आजकलकी तरह परीक्षाका समय शैतानकी लंबी आँतकी तरह महीनों नहीं चलता था। आजकल गरीब विद्यार्थियोंके लिये बड़ी कठिनाई है कि वे मुश्किलसे जाकर शहरोंमें जहाँ परीक्षा होती है, काफी दिनोंतक वहाँ अपना डेरा जमायें पड़े रहें। इस महँगाईके जमानेमें काफी दिन अपने घरसे बाहर पड़े रहना, बड़ी परेशानी और दिक्कतका काम है।

परीक्षाका दूसरा दिन था। पहला पर्चा हो चुका था। विद्यार्थी उत्कण्ठावश दूसरे विद्यार्थियोंसे अपने उत्तरोंका मिलान करते थे। इससे उन्हें बड़ी मनस्तुष्टि और सन्तोष होता था। मेरी सीटके पीछे एक मुसल्मान विद्यार्थी बैठा था—वह अपने उत्तरोंके साथ मेरे उत्तरोंका मिलान कर रहा था, वह मेरे बिल्कुल संनिकट था। उसने एक जमुहाई ली। उसके मुँहसे बड़ी दुर्गन्धि निकली और परिणामस्वरूप मुझे कै (वमन) हो गयी। मेरे सिरमें चक्कर आने लगा। दर्द भी पैदा हो गया। परीक्षा-हालकी निगरानी करने-वालोंने तुरंत भंगीको बुलाया और उसे साफ कराया। मैंने खूब

अच्छी तरहसे हाँथ-मुँह धोया—गुलाबका फूल भी सूंघा, परंतु मेरी तबियत ठीक न हुई। उसी हालतमें मैंने दूसरा पर्चा भी किया। वह पर्चा शायद संस्कृतका था। मेरा वह पर्चा बिगड़ गया। मैं उसे पूरा कर सीधे अपने घर चला आया। मेरा मन बार-बार यही कहता था कि तुम्हारी सफलता संदेहात्मक है। मेरे मकान-में तीन और विद्यार्थी रहते थे। उन्होंने उन पर्चोंके उत्तरोंके बाबत पूछ-ताछ शुरू की——मैंने इधर-उधरकी बातें कर उनसे अपना पिण्ड छुड़ाया, मेरा पेटा यद्यपि डोल गया था; परंतु मैंने अपनी मुखमुद्रा सदैव प्रसन्न रक्खी——ताकि वे मेरी कमजोरी भाँप न सकें।

परीक्षा समाप्त हो गयी। हमारे मकानके तीनों सहपाठी घर जानेको तैयार हुए—उनमेंसे दो हमारी बस्तीके ही थे। ऐन मौकेपर मैंने उनसे घर न चलनेके लिय कहा। कारण पूछनेपर मने उनसे 'चित्रकूट'-दर्शन करनेको कहा। वे लोग चले आये। मैं दूसरे दिन अपना सामान प्रयागके एक परिचित व्यक्तिके यहाँ रखकर धोती, दरी, लोटा और चद्दर लेकर चित्रकूट-दर्शन करनेके लिये चल दिया। मेरे पास खर्च बहुत मामूली था। मैं इलाहाबादसे मानिक-पुर आया। मानिकपुर स्टेशनपर ज्यों ही मैं गाड़ीसे उतरा, त्यों ही हमारे जिले (फतेहपुर) के असनी गाँवके पं० शिवानन्द त्रिवेदी वकीलके लड़के प्लेटफार्मपर मिल गये—वे यहाँ असिस्टैंट स्टेशन-मास्टर थे। वकील साहब फतेहपुरमें वकालत करते थे और साधु-संतोंकी खूब सेवा और सत्सङ्ग करते थे। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। अपने पुत्रकी तरह मेरे प्रति उनकी वात्सल्य-भावना थी। त्रिवेदीजीने बड़े जोरसे चिल्लाकर कहा कि 'अरे भाई! तुम यहाँ कैसे?' मैंने भी

उनसे उसी लहजेमें पूछा—'भाई, तुम यहाँ कैसे ?' उन्होंने कहा—'मैं यहाँ असिस्टैंट स्टेशन-मास्टर हूँ।' मैंने कहा कि 'मैं चित्रकूट-दर्शन करने जा रहा हूँ।' वे मुझे अपने क्वार्टर ले गये। उन्होंने मुझे बड़े आदर और सत्कारसे रक्खा। मानिकपुरसे बाँदा जानेवाली गाड़ीके रास्तेमें करवी और चित्रकूट पड़ता है। मैंने मानिकपुरसे करवी पैदल जाना निश्चय किया; परंतु इस बातको त्रिवेदीजीसे नहीं कहा। उनसे विदा होकर मैं चित्रकूटके लिये चल दिया। रास्ता सीधा था। पक्की सड़क मानिकपुरसे करवी होती हुई चित्रकूट जाती है। मैं शामके करीब करवी आया, बाजारमें हमारी बिन्दकीके बाबू राधावल्लभजी अग्रवाल मिल गये। वे यहाँ करवीमें मिर्जापुरके श्रीभारामल फतेहचन्द्र फर्ममें मुनीम थे। हमारे पिता और हमारे पिताके मामासे उनका घनिष्ठ स्नेह था। वे मुझे अपनी दूकान ले गये। भोजन करके मैं सो गया।

सबेरा हुआ—शौचसे निवृत्त होकर मैंने उनसे चित्रकूट जानेकी आज्ञा माँगी, उन्होंने मेरे साथ दूकानका एक पल्लेदार कर दिया कि वह मुझे रास्ता बता आये। मैंने उससे रास्ता पूछकर उसे विदा किया। चित्रकूट करवीसे तीन-चार मीलसे ज्यादा नहीं है। वहाँ पहुँचकर छबिकिशोरके मन्दिरमें मैंने डेरा डाला। हमारे पासके घोरहा ग्रामनिवासी पं० बंशीधर, मुरलीधर दो भाई थे। वे अच्छे ज्योतिषी थे। वे प्रायः हर साल चित्रकूट जाते थे। वे नयागाँव जागीरदारके यहाँ जाया करते थे। यह नयागाँव पैसुरनी नदीके किनारे बसा है, जो चित्रकूटमें ही है। इन्हींका छबिकिशोरजीका मन्दिर है। उपर्युक्त पण्डितजीने हमसे छबिकिशोरजीके बाबत कहा था। चित्रकूटमें पहले-पहल गया था। मेरा वहाँ कोई परिचित

व्यक्ति नहीं था। भगवान्‌की गोदमें अपनेको सौंपकर मैं निष्कण्टक-भावसे यहीं ठहर गया। मैं दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शौच-कुल्ला करके कामतानाथजी के दर्शनको निकला। मेरी मातामही बड़ी दयालु और भक्त स्वभावकी थीं। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ-में बीतता था। मैं लड़कपनसे अपनी माँके पास न रहकर इन्हींके पास रहता था। अपने पिताको भैया कहता था और उन्हें भैया-अम्मा कहता था। मैं उन्हींके साथ लेटता था। उन्हें तुलसी, सूर तथा मीराके भजन और पद खूब याद थे। वे मुझे खूब सुनाया करती थीं। मीराके पद वे बड़े भक्तिभावसे गाया करती थीं। उन्होंने मुझसे कई बार कहा था कि 'जो कोई चित्रकूटके कामदगिरिकी परिक्रमा और कामतानाथके दर्शन कर आता है, उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं; सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।' जिस दिन मेरा पर्चा खराब हुआ था, उसी दिन मैंने परीक्षाफल निकलनेके पहले कामदगिरिकी परिक्रमा करने और कामतानाथजीके दर्शन करनेका संकल्प कर लिया था। उसकी पूर्ति करके मैंने साधु-महन्तोंके दर्शन किये। यद्यपि वैरागी साधुओंमें मैंने न तो उच्चस्तरकी साधना देखी और न प्रकाण्ड पाण्डित्य। उनमें धर्मका बहिरङ्ग रूप ही देखा। यह भी सम्भव है कि मुझे अच्छे महात्माओंके दर्शन न हुए हों। दोपहरको मैं दर्शन करके और परिक्रमा करके छबिकिशोरके मन्दिरमें गया। वहाँ एक वैश्य महोदय श्रीमद्‌भागवतकी कथा सुन रहे थे। मैं भी सुनने लगा। जब कथाका विश्राम हुआ तो कथा बाँचनेवाले पण्डितजी मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे भोजन करनेके लिये बड़ा आग्रह किया। मैंने उनके अनुरोधको अस्वीकार किया, तब सेठजी आये। उन्होंने मुझे कुछ-न-कुछ खानेका अनुरोध किया।

थोड़ी मिठाई खायी और वहीं छविकिशोरके मन्दिर में सो गया। सुबह उठकर पण्डितजीको प्रणाम कर करवीके लिये प्रस्थान किया। चलते समय मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न था——

मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

——की याद हो आयी। शामको करवी आया। दूसरे दिन मेरे यहाँके सेठजीने मुझसे कहा कि 'लगे हाथ राजापुर भी हो आओ और उधरसे भरवारी स्टेशनपर चढ़कर अपने घर चले जाना।' यह मुझे पसंद आ गयी। उन्होंने राजापुरकी बैलगाड़ीमें मुझे बैठा दिया। ये गाड़ियाँ राजापुर से अनाज बेचनेके लिये करवी आती थीं। मैं राजापुर आकर पं० गंगाप्रसादजीके वहाँ ठहर गया। उपर्युक्त पण्डितजी विन्दकीके पास गँगरावल गाँवके निवासी थे और बिन्दकीमें प्राइमरी स्कूलमें उन्होंने मुझे पढ़ाया था। पण्डितजी हमारे मकानके सामने वैद्य बाबाके कमरेमें रहते थे। वे बड़े साधु स्वभावके पुरुष थे। उनके यहाँ ठहरा। संकटमोचन और तुलसी-दासजीके मन्दिरके दर्शन किये। उनका हस्तलिखित अयोध्याकाण्ड भी देखा। दूसरे दिन शौचसे निवृत्त होकर जलपानकर भरवारीके लिये चल दिया। टेंटमें पैसे थोड़े थे। शायद भरवारीसे बिन्दकी रोडतक रेल-किराया और स्टेशन बिन्दकी रोडसे बिन्दकीतकका इक्काकिराया। निदान राजापुरसे भरवारीतक मैंने पैदल यात्रा की। भरवारीमें रेलमें बैठा और इस तरह बिन्दकी रोड स्टेशनमें उतरकर इक्कासे अपने घर आया।

ज्यों-ज्यों परीक्षाफल निकलनेके दिन नजदीक आने लगे, मैं कुछ सशंकित होने लगा। मेरे दोनों मित्र, जिन्होंने मेरे साथ

परीक्षा दी थी, मेरे पास आते और 'गजट' आनेकी वावत पूछते थे। बिन्दकीमें सरकारी पत्र, जिसमें इन्ट्रेंसका परीक्षाफल छपता था, हिंदी मिडिल स्कूलमें आता है। एक दिन वे दोनों मित्र मेरे पास आये और गजट देखनेका आग्रह करने लगे। मैंने उनसे गजट देख आने और परिणामसे अवगत करानेकी प्रार्थना की। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। थोड़ी देरके बाद दोनों साथी परीक्षा-फल मालूम कर वापस आये। उनमेंसे एकका मुख म्लान था, दूसरे-का प्रसन्न। मैं समझ गया कि म्लान मुखवाले सहपाठी 'फेल' हैं और प्रसन्न मुखवाले साथी 'पास' हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम पास हो गये हो।' मैंने अपनी प्रसन्नताके भाव रोककर फेल होने-वाले साथीको सान्त्वना दी और इस तरह मेरी परीक्षाकी बात समाप्त हुई। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि कोई महान् शक्ति योगक्षेमकी व्यवस्था मेरे लिये किये हुए है। घर आकर मैंने अपनी दादीसे चित्रकूट-दर्शन और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेकी बात सुनायी थी, तब उन्होंने तत्क्षण ही यह कह दिया था, कि, 'बच्चा! तू पास है!' आज परीक्षाफल देखकर निश्चितरूपसे मैंने उनसे कहा—'अजिया, तुम्हारे आशीर्वादसे मैं पास हो गया।' उन्होंने कहा—'नहीं बेटा! कामतानाथने तुझे पास किया।' मैंने उनकी प्रेम-पूरित वाणीको सुना और भगवान्‌की जय-जय कर मैं अपने काममें लग गया।

—पं० चन्द्रिकाप्रसाद बाजपेयी

—:●:—

सेवा-मूर्ति

लगभग आठ मासकी बात है। फ्ल्यूका प्रकोप सम्पूर्ण देशमें व्याप्त हो चुका था। उसी समय मैं रामायणपर प्रवचन करनेके हेतु नवरोजावाद गया। वहाँ जाते ही इनफ्ल्युएंजाने मुझे भी अपने चंगुलमें धर दवाया। मैं अशक्त हो गया। सर्वत्र निराशा दीखने लगी। वहाँ किसीसे मैं परिचित भी नहीं था। अकेला ही था। इसीसे विशेष घवरा गया। पासमें विशेष पैसे भी नहीं थे, जिससे कि घर ही किसी प्रकार जा सकूँ। बहुत बड़े चक्करमें पड़ गया। उसी समय वर्षा भी होने लगी। ऐसी विपत्तिमें कोई बात पूछने-वाला भी नहीं दिखायी पड़ रहा था। तीन वज रहे थे। बुखार जोरोंसे चढ़ा था। जिस मन्दिरमें रुका था, वह भी वर्षाके आघात-को सहन करनेमें असमर्थ था। ऐसी स्थितिमें मैं रामायणकी चौपाई-को धीरे-धीरे पढ़ने लगा।

उसी समय एक बुढ़िया माई मेरे पास आयी और बिना कुछ कहे-सुने ही मेरा लाउड स्पीकर, हारमोनियम और सारा सामान उठा लिया और वोली 'बाबा चलो।' मैं भी विना किसी हिचकिचाहटके लड़खड़ाते हुए चल पड़ा। वहां जाकर मैं लेट गया। मुझे नींद आ गयी। पाँच वजे उठा तो देखा कि बुढ़िया भीगी हुई मेरी चारपाईके पास बैठी रो रही है। मैंने पानी माँगा। बुढ़ियाने पानी देते हुए कहा—'बेटा! तू जल्दीसे अच्छा हो जा।' इतना कहकर उसने 'एस्प्रो' की दो टिकिया मुझे पानीके साथ खिला दी। मुझे कुछ आराम मालूम पड़ा। रात्रिमें विना

कुछ खाये ही मैं सो गया। जब दो बजे रात नींद खुली तो देखा, बुढ़िया बैठी है। उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रु ढल रहे हैं। मैंने कहा—'माँ! तू बैठकर रोती क्यों है ?' बुढ़ियाने आँसू पोंछते हुए कहा—'बेटा! सो जा, कुछ नहीं। मैं सो रही थी; अभी तो आयी हूँ। बेचारी इस प्रकार प्यार करती मुझे चाय बनाकर पिलाती और सेवा करती। वैसे यह बीमारी तीन दिनोंके पहले नहीं समाप्त होती, पर मैं दो ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होनेपर कथा हुई। लोग अपने यहाँ भोजनके लिये आमन्त्रित करते, अच्छा स्थान भी रहनेके लिये देते, पर बुढ़ियाके वात्सल्यभावको देखकर मैं कहीं नहीं गया। कथा समाप्त होनेपर दो सौ दक्षिणा स्वरूप प्राप्त हुए। मैंने अपनी उस बुढ़िया माईके चरणोंमें लेजाकर इस पत्र-पुष्पको समर्पित कर दिया। आग्रह करनेपर बुढ़िया माईने कहा—'बेटा! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ, जो मैं सेवा कर सकूँ। मैं अपनेको धन्य समझती हूँ कि तूने मेरी सेवा स्वीकार की। बेटा! मेरी दक्षिणा तो यही होगी कि हमेशा तू इस अभागिन माँकी सेवा स्वीकार करता रह।' बुढ़िया माईकी इस स्नेहभरी वाणीको श्रवणकर मैं आनन्दविभोर हो गया। उसके इस भावको देखकर हृदयमें श्रद्धाकी लहर उमड़ पड़ी। उसने २५) और देकर २००) वापस कर दिये।

आज भी जब मैं इस सेवा-मूर्तिका पवित्र स्मरण करता हूँ तो मेरे नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलछला आते हैं।

—कुमुदजी कथावाचक, बी० ए०, साहित्यरत्न

—:●:—

भिखारिनके भेषमें पवित्र संस्कार-मूर्ति

अहमदाबादसे मैं भावनगर आ रहा था। शामका समय था। टिकट लेकर मैं गाड़ीमें बैठ गया। डिब्बेमें अबतक रोशनी नहीं हुई थी। चारों ओर मुसाफिरोंकी चहल-पहल, गाड़ीकी सीटीकी तीखी आवाज और इंजिनकी घरघराहटसे वातावरण कम्पायमान था।

मेरे सामने ही एक भाई रेशमी कपड़ोंसे सुसज्जित बैंठे थे। व्यापारी-जैसे लगते थे। बहुत भीड़ थी और गरमी भी बहुत थी। पंखा चल नहीं रहा था। डिब्बेमें रोशनी भी नहीं थी। गाड़ी खुलनेमें कुछ देर थी। इसलिये वे भाई अपने पासकी दो थैलियोंको सीट पर रखकर ठंडी हवामें मन बहलानेके लिये नीचे उतर पड़े।

कुछ समय बाद गाड़ी खुलनेकी तैयारी होने लगी। डिब्बेमें रोशनी हो गयी। पंखे चलने लगे। वे सज्जन डिब्बेमें आ गये। परंतु देखा तो दोनों थैलियाँ गायब। इधर-उधर देखा, नजर दौड़ायी, परंतु थैलियाँ कहीं दिखायी न दीं। उनका चेहरा पीला पड़ गया। मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। आँखें डबडबा आयीं। 'क्या हुआ ?' 'क्या हुआ ?' की आवाज चारों ओरसे आने लगी। उन्होंने कहा- 'उन थैलियोंमें मेरा दो हजार रुपयेका रेशमी कपड़ा था। मैं कपड़ेका व्यापार करता हूँ।' डिब्बेके सारे मुसाफिरोंने सब ओर ढूँढा, सबने निराश होकर यही कहा—'अँधेरे और भीड़का लाभ उठाकर किसी चोर उचक्केने हाथ मारा है।' वह व्यापारी बेचारे मन मसोसकर बैठ गये। उनकी आँखोंके सामने तितलियाँ उड़ने लगीं। गाड़ी चल दी।

परंतु जब धोलका स्टेशन आया, तब मानो एक चमत्कार हुआ। डिब्बेके बाहर कोई चिल्ला रहा था—'किसीकी थैलियाँ खो गयी हैं, थैलियाँ ?' आवाज सुनते ही वे सज्जन मानो नींदसे जग उठे हों—खड़े होकर जोरसे आवाज लगाकर उसे बुलाने लगे। दूसरे यात्री भी सजग हो गये। दरवाजा खोला तो देखा कि मैले और फटे पुराने कपड़े पहने एक भिखारिन-जैसी स्त्री दोनों हाथोंमें थैलियाँ लिये खड़ी है।

उन सज्जनके मानों जान आ गयी, उन्होंने कहा—'ये दोनों मेरी ही थैलियाँ हैं। बहन ! आपको कैसे मिलीं ?'

स्त्रीने कहा—'क्षमा करना भाई! मेरा बेसमझ लड़का अहमदाबादके स्टेशनपर न जाने कहाँसे इनको ले आया। मैंने उसको बहुत पीटा और कहा कि मजदूरी करना भीख माँगकर खाना, पर कभी भी चोरी मत करना। पिछले पापोंसे तो हमारी यह दशा हो रही है ! अब फिर चोरी करेंगे तो अगले जन्ममें हमारी पता नहीं कैसी भयानक दुर्दशा होगी।

व्यापारी फूला नहीं समाता था। वह अपनी जेबसे पाँच रुपयेका नोट निकालकर उस स्त्रीको देने लगा। स्त्रीने पहले तो इनकार किया और साफ-साफ ना कह दी, परंतु दूसरे यात्रियोंके आग्रहसे अन्तमें ले लिया।

हम सब इस प्रसंगको देखकर हैरान हो गये। भिखारिनके भेषमें छिपी वह भारतकी पवित्र संस्कार-मूर्ति अँधेरेमें अदृश्य हो गयी। हम उसकी मूक वन्दना करने लगे।

—रमाशंकर ना० भट्ट

—:●:—

गरीबकी परोपकार-वृत्ति

गत आषाढ़ कृष्ण चतुर्थीकी बात है। मैं और सुखदेव ठाकुर तोबनसे साइकल द्वारा रामचन्द्रपुर जा रहे थे। मेरे पास दो मनी-बेगोंमें पाँच हजार रुपये थे—एकमें तीन हजार और दूसरेमें दो हजार।

हम दोनों बड़ी तेजीसे साइकल चला रहे थे—रास्तेमें कहाँ क्या हुआ सो तो पता नहीं, रामचन्द्रपुर पहुँचकर जब मनीबेग निकालने लगे तो तीन हजारवाली तो मिल गयी, पर दो हजारवाली गायब थी। हमारे शरीरपर मानों बिजली-सी मार गयी। मुँह फीका पड़ गया। मनमें कई प्रकारके तूफान उठने लगे। यह निश्चय हो गया कि अब मनीबेग नहीं मिलेगी। फिर भी मैं साइकलसे उसी रास्तेसे लौटा, यद्यपि पैर भारी हो गये थे। साइकल चलायी नहीं जा रही थी, तथापि मैं आगे बढ़ता गया। इधर-उधर बड़ी तीखी नजरसे देखता लगभग दो माइलतक चला गया। इतनेमें सुनायी दिया—पीछेसे कोई आदमी पुकार रहा है और दौड़ा चला आ रहा है। मेरी रुकने-की इच्छा नहीं थी, मन बहुत खराब था। पर मैं कुछ रुका, इतनेमें वह आदमी मेरे पास आ गया। फटे-मैले कपड़ेसे लाज ढक रक्खी थी उसने, बड़ा ही गरीब जान पड़ता था। उसके चिपके गाल, धँसी आँखें, निकली हुई दाँतें और चमकती हुई हड्डियाँ तथा नसें उसकी मूर्तिमान् दरिद्रताके दर्शन करा रही थीं। उसने समीप आकर बड़े प्रेमसे मुझको नमस्कार किया और कहा—'बाबूजी! यह

बैग आपहीकी है। मैंने दूरसे इसको आपकी जेबसे गिरते देखा था। मैंने इसे उठाया, इतनेमें आप बड़ी तेजीसे बहुत दूर निकल गये। मैंने आवाज दी, पर आप सुन नहीं पाये । आखिर मैं यह सोचकर यहीं बैठ गया कि बैग न मिलनेपर बाबूजीको बड़ा दुःख होगा और वे इसी रास्ते उसे खोजने आयेंगे, तब मैं उन्हें दे दूँगा । अब यह आपकी बैग सँभालिये ।'

उस गरीबकी परोपकार-वृत्ति, ईमानदारी देखकर मैं गद्गद हो गया । मेरा मुरझाया हुआ मुख-कमल खिल उठा । मेरा रोम-रोम उसके उपकारसे दब गया । मैंने पचीस रुपये कठिनतासे उसको दिये !

—नवरत्नमल नाहर

—:●:—

अमृतका प्रवाह

रामबदन और हरजीवन दोनों सगे भाई थे, खेतीका काम था। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। पिता-माता छोटी अवस्थामें मर गये थे। अतएव बड़े भाई रामबदन और उसकी स्त्री कौसिल्याने ही हरजीवनको बड़े प्यारसे पाला-पोसा, उसका व्याह किया। हरजीवनकी स्त्री गौरी घर आयी। वह कुछ ईर्ष्यालु तथा कड़े मिजाजकी थी। वह अपनी जेठानी तथा उस के दोनों बच्चे—रामू और पमियाके साथ रूखा व्यवहार करती। जेठानी कौसिल्या बड़े विशाल हृदयकी महिला थी। वह उसके रूखे व्यवहारको देखकर हँस देती और सदा सच्चे स्नेहका ही बर्ताव करती। उसके दोषोंको छिपाती। पतिके सामने उसकी जरा भी निन्दा नहीं करती। बल्कि उसके गुणोंकी प्रशंसा करती। पत्नीके व्यवहारसे हरजीवनको दुःख तो बहुत होता, पर वह पत्नीकी नाराजीके भयसे कुछ बोलता नहीं। किन्तु वह उसकी शिकायत भी नहीं सुनता। इससे वह और भी कुढ़ती। उसका दुर्व्यवहार बढ़ता गया। पर कौसिल्यापर और उसके कारण रामबदनपर वह कुछ भी असर नहीं डाल सका। वे गौरीको मानस रोगसे ग्रस्त समझकर उसकी भूलोंपर ध्यान नहीं देते और सदा उसपर कृपा तथा प्रीति ही करते।

एक दिन गौरी झुंझलायी हुई-सी रसोई बना रही थी। कौसिल्याका लड़का रामू भूखा था। निर्दोष बच्चेके मनमें कोई भेदभाव नहीं था। वह जैसा माँको समझता, वैसा ही चाचीको।

हाँ, कभी-कभी चाचीकी डरावनी सूरत देखकर कुछ सहम-सा जरूर जाता। वह चाचीके पास रसोईमें आया और कुछ खानेको माँगने लगा। कौसिल्या दूसरे काममें लगी थी। घरपर पुरुषोंमें भी कोई नहीं था। गौरीने बच्चेको दुत्कार दिया और कहा—'चला जा, सीधा-सा यहाँसे, अपनी माँ आये तब खानेको माँगना। मुझसे ची-चपड़ की तो जलती लकड़ीसे पीटूँगी। एक बार बच्चा कुछ डरा तो सही, पर चार-सालका भोला था, भूख लगी थी। वह समझा ही नहीं, चाची क्या कह रही है और उसने फिर जरा जोरसे चिल्लाकर रोटी माँगी। गौरी झुँझलायी हुई थी ही। जलती लकड़ी चूल्हेसे निकालकर फेंकी, लड़केके पैरपर लकड़ी गिरी। लड़का चिल्लाया, कौसिल्या दौड़ी आयी। देखा तो लड़केके पैरमें कुछ चोट लगी है और कुछ जल भी गया है। गौरीने गुस्सेमें आकर यह काण्ड कर तो दिया, पर अब वह भी डर रही थी। कहीं हरजीवन-को पता लग गया तो पता नहीं क्या हो जायगा, क्योंकि वह इन दिनों गौरीकी हरकतोंसे बहुत दुखी था। कई बार वह कह चुका था—'घरसे निकल जाऊँगा या मर जाऊँगा।'

वह रामूके पास आकर उदास खड़ी थी, देख रही थी—जेठानी कौसिल्या क्या करती है। कौसिल्याने कहा—'वहिन ! डर मत, यों भूल हो ही जाया करती है। लड़का कहीं दौड़ता हुआ गिर पड़ता तो चोट लगती या नहीं। यहाँ भी वैसे ही लग गयी।' फिर बच्चेसे कहा—'बेटा ! जा, चाची तुझे लड्डू देगी और मैं अभी तेरा पैर धोकर पट्टी बाँध देती हूँ। तू रो मत।' रामूने लड्डूके नामसे रोना बंद कर दिया। कौसिल्याने आलू पीसकर

जलेपर बाँध दिये और चोटपर पट्टी लगा दी। गौरीका तो हृदय ही बदल गया। उसने सोचा—'मैंने आजतक दुर्व्यवहार करनेमें काई कसर नहीं रक्खी। पर सहन करनेमें कौसिल्या मुझसे बहुत आगे बढ़ गयी। आज तो मेरे दुर्व्यवहारकी सीमा ही नहीं रही। इतनेपर भी कौसिल्याका यह सद्व्यवहार, यह शान्ति और मेरे प्रति यह स्नेह!' उसका हृदय द्रवित हो गया। आँखोंसे अनुताप और श्रद्धाके मिश्रित आँसू बह चले। वह दौड़कर लड्डू लायी और अपनी गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे रामूको खिलाने लगी।

इतनेमें दोनों भाई घर आ गये। उन्होंने रामूको गौरीकी गोदमें बैठे लड्डू खाते देखा तो वे चकित हो गये। गौरीने सलज्जभावसे मुँह फिरा लिया। कौसिल्या बोली—'धूपके लिये अँगारे ला रही थी। रास्तेमें एक अँगारा गिर गया। रामू दौड़ा आ रहा था, अँगारा छूते ही चिल्लाकर गिर गया। जरा-सी चोट लग गयी और कुछ दाग गया। गौरीने दौड़कर मरहम-पट्टी कर दी और अब बड़े स्नेहसे वह अपने बेटेको लड्डू खिला रही है।

सचमुच रामू आज गौरीका लाड़ला बेटा हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। कौसिल्याकी सहिष्णुता, स्नेह तथा सद्व्यवहार-ने घरमें सब ओर अमृतका प्रवाह बहा दिया।

—गोपाल अवस्थी

—:●:—

कर्जका भय

दो साल पहलेकी बात है। हीरालाल नामक एक किसान आया और मुझसे पूछने लगा—'तुम सागरमलजीके लड़के हो क्या ?' मेरे 'हाँ' कहनेपर वह सौ रुपये निकालकर देने लगा और बोला—'बहुत दिन हुए, मैं तुम्हारे पिताजीसे एक सौ रुपये उधार ले गया था। उस समय तुम बहुत छोटे थे। अबतक मैं वे रुपये नहीं लौटा सका। अब मेरे पास रुपये जुटे हैं, तब लेकर आया हूँ।' मैं उसकी ओर देखता रह गया। तब उसने फिर कहा—'मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ। मुझे कर्जसे मुक्त कर दो। मैं ब्याज नहीं दे सकूँगा। किसी तरह बड़ी कठिनतासे रुपये इकट्ठे कर पाया हूँ। मुझे कर्जका बड़ा भय है बाबू !' यों कहकर वह बार-बार हाथ-पैर जोड़ने लगा।

मैंने सोचा, कितना ईमानदार और कर्जसे डरनेवाला है बूढ़ा किसान। बड़े-बड़े लोग भी आज क़ानूनसे बचकर रुपये हजम कर जाते हैं। मैंने चाचीजीसे बिना पूछे ही रुपये ले लिये तथा उससे कह दिया—'तुम कर्जसे मुक्त हो गये।' वह प्रसन्न होकर चला गया।

ये रुपये लगभग पचीस वर्ष पहलेके थे। हमारे पास कोई भी हिसाब नहीं था। यहाँतककी चाचीको भी याद नहीं था।

किसानकी इस ईमानदारीको देखकर भगवान्‌से यह प्रार्थना की जाती है कि हम सबको भगवान् ऐसी ही सद्‌बुद्धि दें।

—हरीराम केडिया

—:❁:—

नष्ट नीड

वह मुझे बहुत बुरा लग रहा था। टेबलपर कुर्सी रखकर मैंने उसे खींचकर जमीनपर पटक दिया। कुछ पीला-सा द्रव पदार्थ और श्वेत कण फर्शपर बिखर गये। अंदर बैठी चिड़िया चूँ-चूँ करती उड़ गयी। वह पंख फड़फड़ाती अपने टूटे घोंसलेतक आती और पुनः लौट जाती। उसका यह क्रम बहुत समयतक चलता रहा।

किताब लेकर पढ़ने बैठा, पर काले शब्दोंके बीच मुझे यत्र-तत्र अनेक चिड़ियोंके छोटे-छोटे गुलाबकी पंखुड़ियों-से बच्चे दीख पड़े, मैंने पुस्तक पटक दी।

भोजन करने बैठा, पर मुझे दीखा—जैसे मेरी थालमें दालके स्थानपर पीला-सा द्रव-पदार्थ और रोटीके स्थानपर वही अण्डोंके श्वेत कण परोसे गये हैं। मैं उठ गया।

बाहर आकर खुले आँगनमें घूमने लगा, पर दूर क्षितिजसे एकके बाद एक दैत्याकार श्वेत अण्डे आते और मेरे निकट आते-आते सूक्ष्म होकर फूट जाते। मेरी नजरोंमें वही पीला तरल पदार्थ और श्वेत कण तैरने लगे।

सोचा, बाहर घूम आऊँ। नदी-किनारे रेतमें बड़ी देर बैठा रहा, पर चिड़ियोंके लाख-लाख झुंड एक साथ आकर मेरे सामने करुण क्रन्दन करने लगे।

'ऊँह ! ये सब क्या पागलपन है। मैं फिजूल जरा-सी बातको

सोचकर इतना परेशान हो रहा हूं, क्या हो गया। यह भी कोई उद्विग्न होनेवाली घटना है?' सोचकर मैंने सिरको हल्का-सा झटका दिया और उठ खड़ा हुआ।

घर आया तो पत्नीने बताया, मुन्नेको तेज बुखार है। देखा, सचमुच बुखार तेज था।

——'दिनभर पानीसे खेलता रहता है। सर्दी लग गयी है। उतर जायगा।'

चार दिनतक बुखारकी हालतमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। डाक्टर-को बुलाया तो बताया—'टाइफायड'।

मुन्ना सुबहसे बेहोशीकी दशामें था। शरीरका तापमान १०४ से कम नहीं हो रहा था। दूधकी पट्टियाँ चढ़ानेके पश्चात् भी हालत चिन्तनीय हो गयी। हम दोनों ११ बजे राततक मुन्नाके बिस्तरके निकट बैठे रहे। मौन, शान्त! बहुत चाहनेपर भी मैं इस अशुभ विचारको हृदयसे नहीं निकाल सका कि प्रभुने मुझे अपने अपराधका फल दिया है। मैंने क्यों उन निरपराध चिड़ियोंके अण्डोंको नष्ट किया और फिर वही क्रन्दन करती चिड़िया, तरल पीत द्रव, श्वेत कण, लाल-लाल मासूम बच्चे। विचारोंमें तल्लीन मैं सो गया।

रातके दो बजे थे। मैं चीखकर उठ बैठा।

'नहीं, ऐसा मत करो। उसका कोई अपराध नहीं। भगवान्‌के लिये मुझपर दया करो। क्षमा कर दो मुझे।'

मैं रोया, गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की, पर उस क्रूर विकराल दैत्यने मेरे मुन्नेकी टाँग पकड़कर जमीनपर पछाड़ दिया। वहीं कुछ पीला तरल पदार्थ और हड्डियोंके श्वेत कण मेरे सामने बिखर गये।

उफ ! कितना बीभत्स स्वप्न था । मेरी साँस जोरोंसे चलने लगी । पत्नी जाग गयी थी । मुन्ना बेहोश था ।

'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।' मैने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

'मुझे क्षमा कर दो प्रभो ! मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया था । इतना कठोर दण्ड न दो भगवन् ! मैं सहन नहीं कर सकूँगा । मेरे बच्चेके प्राणोंकी भीख । इस बार मुझे निर्दोष समझकर दया कर दो देव !' मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रो पड़ा और मेरी हिचकियाँ तब वन्द हुई जब मुन्नेने आँखें खोलकर क्षीण आवाजमें कहा—'पानी ।'

घटना दो माह पूर्वकी है । मुन्ना पहलेसे अधिक स्वस्थ है । उस समयसे मैं हमेशा इसी प्रयत्नमें रहता हूँ कि मुझसे कभी कोई निरपराध जीव-हिंसा न हो जाय ।

बावा तुलसीदासकी एक ही चौपाई हर समय हृदयपर एक प्रहार करती जान पड़ती है और मैं पुनः अपने स्थानपर आ जाता हूँ पथभ्रष्ट होनेपर भी ।

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।

—मोहनलाल चतर

—: ● :—

सहिष्णुता

जब कभी दिवाली आती है तो मेरे मानसमें एक विशेष प्रतिक्रिया होती है। सन् १९५३ में मेरे फूफाजी रामदेवरा स्टेशन (उत्तर रेलवे) पर सहायक स्टेशनमास्टर थे।

दिवालीके दूसरे दिन प्रायः बच्चोंको पटाके छोड़नेको मिलते हैं। हमें भी परम्परानुसार पटाके मिले। बच्चोंमें विचार-शक्ति तो होती नहीं। उनके लिये तो हर स्थल क्रीडालय है। मैंने और मेरी बुआके लड़केने मिलकर पटाके कमरेके अंदर ही छोड़ने शुरू किये। सहसा मेरे एक सम्बन्धीका वच्चा हाथमें ताराबत्ती लिये कमरेमें आ घुसा और लगा उसे घुमाने। कमरेकी अलगनीपर रेशमी तथा ऊनी वस्त्र और शाल लटक रहे थे। एक चिनगारी उनको छू गयी और बात-की-बातमें धू-धूकर सारे कपड़े जल गये। बच्चा होनेके कारण मैं आग बुझानेमें असमर्थ था, इसलिये 'लाय-लाय' कहकर मैं चिल्लाया। मेरी आवाज सुनकर मेरी फूफी आयी और उसने मटकेभर पानीसे आग बुझायी। कपड़े सब जल चुके थे। मेरे फूफाजी स्टेशनपर अपनी ड्यूटीपर थे। वे आये। अपनी गाढ़ी कमाईसे खरीदी हुई चीजोंका हाल देखा और सिर्फ इतना ही कहा —'जल गयी तो जल गयी। बच्चों को पीटनेसे या भाग्यको कोसनेसे क्या होता है।'

उनके ये वचन मुझे आज भी स्मरण हैं। ५००), ६००) रु० का माल नष्ट होता देखकर भी जिसने उफ तक न किया, वह देवता नहीं तो और क्या है।

—सुन्दरलाल बोहरा

—: ● :—

परमिट

तीन दिनोंसे लगातार वर्षा हो रही थी। आज लोगोंने सूर्यदर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। साइकल मरम्मतके लिये दी हुई होनेसे आज मैं पैदल चलकर ही आफिस पहुँचा और क्लर्कोंके सलाम स्वीकार कर अपनी कुरसीपर बैठ गया। कुछ ही देरमें एक गरीब-सा दीखनेवाला आदमी आया। उसने सीधे मेरे पास कहा—'बाबूजी ! परमिट काट दीजिये न, घरमें जगह-जगह पानी चू रहा है, घर जलसे भर गया है।' वह आशाभरी नजरसे मेरी ओर देखता रहा। मैंने कहा—'अर्जी दो, दो-एक दिनमें मिल जायगा।' उसने लाचारीभरे गुस्सेसे कहा—'बाबूजी ! अर्जी तो कितनी ही, कितनी ही वार दी जा चुकी है; परंतु न तो परमिट ही मिलता है, न कोई उत्तर ही।' मैंने कहा—'भाई ! तुम्हारी सारी अर्जियाँ, पता नहीं, कहाँ बह जायँगी और तुम्हें इस चौमासेमें आवश्यक सीमेंट अगले दो चौमासे बीत जानेपर भी नहीं मिलेगा। वह एकदम निराश हो गया। मैंने फिर कहा—'यों अर्जियाँ देनेसे परमिट कभी नहीं मिलेगा। दो-पाँच रुपये हों तो निकालो, अभी परमिट काट दूँ।' वह निराश-मुख धीरे-धीरे चलकर आफिससे बाहर निकल गया। मैं भी अपने नित्यके काममें लग गया।

कुछ ही समय बाद एक बड़ी तोंदवाले सेठजी आये। मैं तुरंत उन्हें लेने सामने गया और मैंने कहा—'आपने क्यों तकलीफ की, कहला दिया होता तो मैं ही आपके घर आ जाता।'

'तकलीफ क्या है भाई ! घरकी ओर जा रहा था तो मनमें आया कि चलो भाईकी खवर पूछ आऊँ ।'

'आपकी कृपा है ।'

'ठीक है भाई, पर अपनी उन ५० वोरियोंका क्या हुआ?' सेठ आखिर मुद्दे की वातपर आ गये ।

'तैयार ही है, आप न आये होते तो मैं स्वयं आकर आपको दे जाता ।' मैंने विनयके साथ कहा ।

'मैं तुम्हें भूलूँगा नहीं, अपनी रकम कल बँगलेसे ले आना ।' सेठजीने कहा । तथा वे मुसकराते हुए आफिससे वाहर चले गये । मैं उन्हें पहुँचाने कारतक गया । सेठने मुझे फिर परमिटकी याद दिलायी और देखते-ही-देखते उनकी कार धूल उड़ाती हुई अदृश्य हो गयी ।

शामको काम निपटाकर मैं वाहर निकला और टहलता हुआ चलने लगा । सेठसे मिलनेवाले पैसोंको किस काममें लगाया जाय—मेरा मन इसीकी उधेड़-बुनमें लगा था । आकाशमें मेघराजने अपनी सृष्टि-रचना आरम्भ की । कुछ ही क्षणोंमें गाज-बीजके साथ वरसात शुरू हो गयी । भाग्यकी बात, आज मैं छत्ता भी घर भूल आया था । इतनेमें आशाकी किरण-सरीखी सेठकी कार आती दिखायी दी । मैंने हाथ उठाकर कार रुकवायी और कहा कि 'घरकी ओर जाते हों तो मुझे ले चलें ।' सेठने कहा—'दुःख है, मुझे दूसरे कामसे जाना है ।' और रास्तेके कीचड़को उछालती हुई सेठकी कार पूरी चालसे चली गयी । मैंने सेठकी कारको अपने घरकी ओर मुड़ते दूरसे देखा । मेरे मनमें सेठके प्रति छिपा तिरस्कार

पैदा हो गया। सेठके विचारोंको छोड़कर मैंने देखा तो मैं पूरा भींग गया था। चलते रहनेसे सर्दी लगनेका डर था, इसलिये मैंने रास्तेसे एक ओर जाकर एक घरके छप्परके नीचे आश्रय लिया। 'बाबूजी ! अंदर चले आइये न, आपका ही घर है।' घरके मालिककी प्रेमभरी आवाज सुनायी दी। मैंने देखा–जिसको मैंने दिनमें आफिससे फटकारकर निकाल दिया था, वही इस समय अपने घरमें बड़े प्रेमसे मेरा स्वागत कर रहा है।

मुझे बड़ी शरम आयी। मैं अन्दर चला गया; देखा तो आधे घरमें पानी भर रहा था। एक ओर जरा-सी सूखी जगहमें एक बच्चा सोया था। वर्षा अभी मूसलाधार बरस रही थी। छत जगह-जगहसे चू रही थी। मकान-मालिककी आवाज सुनकर मैं विचार-तन्द्रासे जागा। वे कह रहे थे—'बाबूजी ! आप भींगे कपड़े बदल लीजिये, नागजी की माँ अभी भींगे कपड़ोंको सुखा लायेगी।' उन्होंने मुझे एक धोती दी, मैंने अपने भींगे कपड़े बदले। थोड़ी ही देर बाद वे भाई गरम दूधका प्याला भरकर लाये और बड़ा आग्रह करके मुझे पिला दिया। कुछ समयके पश्चात् वर्षा बन्द हो गयी। उनकी पत्नीने मेरे कपड़े ला दिये। कपड़े पूरे सूख नहीं पाये थे, पर मैंने उनको पहन लिया। मैं चलने लगा, तब 'जरा ठहरिये, मैं आपके साथ चलता हूँ। रात बहुत बीत गयी है।'—यों कहकर लाठी और लालटेन लेकर वे भाई मेरे साथ हो लिये। उनकी इस मृदुताने, अपकारके बदले उपकार ने मुझे विचारोंमें डाल दिया। उस दिनका सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो गया।

'तुम्हारे-जैसे गरीब आदमीको परमिट मिलना मुश्किल है'

आदि मेरे अपमानके वचन और दीनभावसे मेरी ओर देखती हुई उनकी मूर्ति मेरे सामने खड़ी हो गयी। उनके प्रति इस प्रकारका वर्ताव करनेके लिये मेरा मन पश्चात्तापसे भर गया। मैं विचार करने लगा—'क्या यह गरीब है? इसकी जान-पहचान नहीं थी, इसीसे मैंने इसको फटकार वताकर निकाल दिया! क्या यह गरीब मनुष्य नहीं है? क्या इसको सीमेंटकी जितनी जरूरत है, उतनी सेठको है? सीमेंट जहाँ इसकी अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ वह सेठ तो शायद सीमेंटका उपयोग नयी कोठी बनानेमें ही करता। इसको सीमेंट न मिले और कदाचित् बरसाती हवाका असर इसके बच्चेपर हो तथा वह बीमार पड़ जाय तो यह बेचारा दवाके पैसे कहाँसे लायेगा? इन विचारोंमें घर कब आ गया, इसका भी मुझे पता नहीं लगा। घरकी सीढ़ियोंपर चढ़ते हुए मैंने उनसे कहा—'अपना सीमेंटका परमिट कल अवश्य ले जाइयेगा।' वे हर्षसे गद्गद हो गये और मेरे पैरों पड़ने लगे। मैंने उनको तुरंत उठाकर कहा—'न तो मेरे पैरों पड़नेकी आवश्यकता है, न आभार माननेकी। आपने ही मुझको अपने सच्चे कर्तव्यका ज्ञान करवाया है।' उन्होंने कहा—'महाशयजी! मैं तो केवल निमित्त हूँ, होता तो सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे है।' वह प्रसन्न होता अपने घर लौट गया। आज मैं पहली बार खूब गहरी नींद सोया। दूसरे दिन मैंने सेठका ५० बोरियोंका परमिट रद कर दिया।

—जशवंत शायर

—:●:—

मिलनेका पता
गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

Nc